
NAINI TAL
दुर्गा साह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no.
Book no.
Reg no.

पहाड़ के फूल

पत्थर की क्यारियों में पहाड़ के फूल खिलते हैं; शोणित का पानी उन्हें सींचता है; तलवारों की छाया में, तीरों की बौछारों में, समर के शूलों में वे फूल बढ़ते और फूलते हैं। संकटों की उष्ण बयार उनकी सुगन्ध और सौरभ को दिग्दिगन्त में प्रसारित करती है।

चित्तौड़ की चिताओं पर ऐसा ही एक फूल मुस्कराया। बनवीर ने उसे खिलते ही मसलना चाहा। परन्तु वीरांगना पन्ना ने अपने पुत्र के शोणित से सींचकर षड्-यन्त्रों की लू-लपट से उसकी रक्षा की। अरावली की क्यारियों में स्वामिभक्ति का स्नेह और सेवा पाकर वह फूल भय और संकट के शूलों में भी खिल उठा।

पर, पन्ना को यह सह्य नहीं हुआ कि पुत्र की बलि चढ़ाकर जिस उदय को बचाया, वह मालिन की बेटी नन्दिनी से प्यार करे और चित्तौड़ पर अधिकार करने के लक्ष्य से च्युत हो जाये। जिसने बेटे का बलिदान किया, वह नन्दिनी को बलि चढ़ाते ज़रा भी नहीं हिचकिचाई। परन्तु क्या उसके इस बलिदान से उदय प्रसन्न हुआ ? क्या वह नन्दिनी को भूल सका ?

अकबरी आतंक से जीवन-भर लोहा लेनेवाले उस वीर के दिल के इसी कसकते घाव को देसाई जी ने इस कृति में देखा और सहानुभूति से सहलाया भी है।

पहाड़ के फूल

卐 卐

पहाड़ के फूल

[राजस्थान से सम्बन्धित ऐतिहासिक उपन्यास]

लेखक
रमणलाल वसन्तलाल देसाई

अनुवादक
श्यामलाल मेढ़



वोरा एण्ड कम्पनी, पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,
३, राउण्ड बिल्डिग, कालबादेवी रास्ता, बम्बई-२

• प्रथम संस्करण
फरवरी १९६०

• मूल्य : रु. ३·५०

• प्रकाशक :
के. के. वोरा,
वोरा एण्ड कम्पनी,
पब्लिशर्स प्रा० लिमिटेड,
३, राउण्ड बिल्डिंग,
बम्बई २.

• मुद्रक :
मुहम्मद शाकिर,
सहयोगी प्रेस,
१४१, मुट्ठीगंज,
इलाहाबाद ३.

प्रकाशकीय

'पहाड़ के फूल' ! नाम कुछ विचित्र लगता है। लेकिन वीरों की भूमि राजस्थान तो सदा से ही आश्चर्यों की जननी रही है। अरावली की पहाड़ी गोद में कितने फूल खिले, उन्होंने अपनी सुवास फैलायी, दिग्-दिगन्त को गमगमा दिया और जिस धरती से जन्मे थे उसी पर न्यौछावर हो गये !

राणा साँगा की पवित्र गादी पर विक्रम को मारकर बनवीर बैठा। वह साँगा के अन्तिम पुत्र उदय को भी मार देना चाहता था। परन्तु वीरांगना पन्ना ने अपने पुत्र की बलि देकर उसे बचा लिया। नन्हा उदय कोमलमेर के दुर्ग में पल-पुस कर बड़ा हुआ। यही उदय आगे चलकर प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप के पिता बने।

ऐतिहासिकों के मन्तव्यों के अनुसार उदयसिंह न अपने पिता के सदृश्य वीर था और न अपने पुत्र प्रताप के ही सदृश्य। परन्तु स्वाधीनता का पुजारी वह अवश्य था। उदयपुर का रमणीक नगर उसी ने बसाया। और जब तक उदयपुर रहेगा उदयसिंह का नाम भी अमर रहेगा।

श्री रमणलाल वसन्तलाल देसाई ने ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर, गहन अध्ययन के पश्चात् राजस्थान के इतिहास से सम्बन्धित जिन उपन्यासों की रचना की है उनमें 'पहाड़ के फूल' का स्थान उल्लेखनीय है।

यह कथानक अभी अपूर्ण है। इसका दूसरा खण्ड एक स्वतन्त्र उपन्यास के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। उसका नाम होगा—महाराणा उदयसिंह।

आशा है पाठकों को यह ऐतिहासिक उपन्यास-माला पसन्द आयेगी।

अनुक्रम

पत्थर की क्यारियाँ

आज मेवाड़ के मर्मस्थान चित्तौड़गढ़ का वातावरण बड़ा ही क्षुब्ध हो रहा था, मानो किसी ज्वालामुखी के फटने से वह उद्वेलित हो गया हो।

मेवाड़ के महाराणा का अर्थ है—मेवाड़ की प्रजा की वीरता का पुंज, मेवाड़ी जनता का जीवित आदर्श, मेवाड़ियों के पूर्वजों का कीर्ति-बिम्ब, लोगों की अभिलाषा का अनुपम दर्पण।

महाराणा साँगा के बाद गद्दी पर बैठनेवाले उसके दोनों पुत्रों ने अपने पद को सुशोभित नहीं किया। विक्रमादित्य ने गद्दी पर बैठते ही राज्य के सुदृढ़ स्तम्भ, मेवाड़ के सामन्तों का अपमान आरम्भ कर दिया। यह क्रम इतना बढ़ा कि परिस्थिति सिसोदिया सामन्तों के लिए असह्य हो गयी, और सब ने मिलकर यह निश्चय किया कि विक्रम को पदच्युत कर उसके स्थान पर, उसके निकट-सम्बन्धी बनवीर को महाराणा-पद प्रदान करना चाहिए!

वर्तमान महाराणा मेवाड़पति ही क्यों न हो, यदि वह मेवाड़ की रक्षा करते हुए, दिल्ली के राज्य-दीप को बुझाने का कार्य छोड़, अपने

चाटुकारों के कहने से मेवाड़ के परम्परागत सामन्तों का सतत अपमान करता है तो उसे समझना होगा कि वह पदभ्रष्ट हो सकता है। इस बात का बोध-पाठ राणा को देने का सामन्तों ने निश्चय किया। और एक दिन उसे चरितार्थ भी कर दिखाया! एक प्रातःकाल विक्रमादित्य गद्दी से उतार दिया गया, और सायंकाल के समय, उसके स्थान पर बनवीर को गद्दी पर बिठाने का समारोह किया गया।

बनवीर ने बड़ी कठिनाई से गद्दी पर बैठना स्वीकार किया। मेवाड़ के लिए उसके हृदय में पूरा प्रेम था, तथापि मेवाड़ के सिंहासन पर बैठने में उसे बड़ा ही संकोच होता था।

अन्त में, उसने सामन्तों के सामने अपनी एक शर्त रखी—गद्दी पर मैं तब बैठूँगा, जब आप इस बात का वचन दें कि मेरे प्रत्येक कार्य में, आप मुझे सहायता और सम्मति प्रदान करेंगे।

'ऐसा न होता तो आपसे गद्दी पर बैठने की प्रार्थना क्यों करते?' सामन्तों ने कहा।

'मेरे कार्य आपको अप्रिय लगें, तब भी!'

'आपके कार्य मेवाड़ की भलाई के लिए ही होंगे, तब अप्रियता का प्रश्न ही क्योंकर उठ सकता है?'

'इस समय कदाचित् आपकी समझ में न आये; हो सकता है, अवसर आने पर भी उसके महत्त्व को आप न समझें। इसलिए मुझे पहले ही इस बात का आश्वासन चाहिए कि मेरी आज्ञा का उल्लंघन कोई नहीं करेगा!'

'हम लोग इस सिंहासन की शपथ लेकर कहते हैं कि सिसोदिया-वंश की परम्परा के अनुकूल होनेवाले आपके किसी भी कार्य का विरोध हम नहीं करेंगे।'

'अब देखना है, यह आश्वासन कहाँ तक कार्यान्वित होता है!'

कहते हुए बनवीर ने गद्दी पर बैठने की अपनी अन्तिम स्वीकृति दे दी। उसी दिन सायंकाल के समय शुभ मुहूर्त में सामन्तों की उपस्थिति

में, चित्तौड़ के दरबार-गृह में उसने पदार्पण किया ! सिंहासन के पास जाकर, वह कुछ क्षणों तक चुपचाप खड़ा रहा। इसके बाद, उसने चारों ओर दृष्टि डाली।

सारा दरबार-गृह दीपमालाओं से जगमगा रहा था।

'महाराणा बनवीर की जय !' दण्डनायक ने जयघोष किया। सिंहासन की पदावली पर एक पैर रखकर बनवीर कुछ क्षणों तक रुका रहा।

'मैंने अभी सिंहासन की पदावली पर ही पैर रखा है....महाराणा-पद पूर्ण रीति से स्वीकार करने के पहले, आप सब मेरे निश्चय को समझ लें।' बनवीर ने गम्भीर मुख बैठे सरदारों से कहा।

'हमने ही आपको प्रार्थना करके बुलाया है। चित्तौड़ के उद्धार के लिए आप जो कहेंगे और करेंगे, वह सब हमको स्वीकार होगा।' एक सरदार ने सादर उत्तर दिया।

बनवीर ने अधिक स्पष्टतापूर्वक कहा—मैं यही चाहता हूँ। गद्दी का मुझे ज़रा भी मोह नहीं, यह तो आप भली भाँति जानते हैं। परन्तु गद्दी पर बैठने के बाद इस गद्दी का महत्त्व बढ़ाने के लिए जो-जो कार्य मैं करूँ, उसका ज़रा-सा भी विरोध मुझसे सहन न होगा।

'आपको हम लोग यहाँ इसलिए नहीं बुला लाये हैं कि लौटाकर आपका अपमान करें। आपको आमंत्रित किया है मेवाड़ का मुकुट धारण-कर, मेवाड़ के गौरव को बढ़ाने के लिए।' एक दूसरे मेवाड़ी सरदार ने निवेदन किया।

'मेरे मस्तक पर मेवाड़ के महिमावंत मुकुट को रखने के पूर्व पुनः विचार कर लें। मुकुट धारण करने के पहले मैं आपका आज्ञाकारी, जो आप कहेंगे, करूँगा।....यदि आपकी इच्छा हो तो मैं अपने दुर्ग में लौट जाऊँगा।' बनवीर ने अपने मन्तव्य को अधिक स्पष्ट किया।

'महारावल महाराणा श्री बनवीर की जय !' एक सामन्त ने जयघोष किया। इस जयघोष में अन्य सामन्त भी सम्मिलित हो गये। एक सरदार धीर, गम्भीर गति से आगे बढ़ा और सिंहासन के निकट जाकर

उसने रत्नजटित मुकुट बनवीर के मस्तक पर रख दिया। पार्श्ववर्ती सेवकों ने तुरन्त चँवर डुलाना शुरू किया।

दण्डनायक ने पुनः महाराणा का जयघोष किया; शहनाइयाँ बजने लगीं; दरबार-गृह के बाहर दुंदुभि का हर्ष-नाद सुनाई दिया।

संकोच में खड़े बनवीर ने सिंहासन को नमस्कार किया, और उसके बाद गम्भीर मुद्रा से वह सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। बनवीर के सिंहासन पर बैठते ही एक काला, हृष्ट-पुष्ट, मूर्तिमन्त पौरुष के समान भील आगे आया। महाराणा को प्रणामकर उसने कमर से कटार खींची और अपनी उँगली में चुभो दी।

काली उँगली से शुद्ध लाल रंग का निर्झर फूट निकला। सिंहासन के निकट पहुँचकर, उस भील ने अपनी उँगली में से बहते रुधिर से बनवीर के मस्तक पर तिलक लगाया!

पुनः महाराणा बनवीर का जयघोष हुआ। इसके बाद वह भील-सामन्त अपने रुधिर को पोंछता हुआ, प्रसन्न वदन लौट गया। और अपने निश्चित स्थान पर जाकर खड़ा हो गया।

इस विधि के पश्चात्, एक के बाद एक—सभी सामन्तों ने सिंहासन के निकट जाकर, बनवीर को प्रणाम किया और अपनी-अपनी भेंट उसके चरणों पर धरी।

गद्दी पर बैठते ही, बनवीर का संकोच अचानक अदृश्य हो गया। अभी तक उसका मन अस्थिर और शंकाशील था। सिंहासन पर आरूढ़ होने के बाद उसके मन की अस्थिरता चली गयी, और उसके मुख पर दृढ़ता का भाव दीख पड़ा। उसको अपनी विशिष्टता का भान होने लगा—आज मेवाड़ की प्रसिद्ध राजगद्दी का वह अधिकारी था; सूर्यवंशी सिसोदिया कुल का वह अग्रणी था; यही क्यों, सारी राजपूत जाति का मुकुटमणि था! आज्ञा पालन करनेवाले एक साधारण सामन्त से, वह आज आज्ञा देनेवाला सामन्तपति बन गया। उसके मुख की दृढ़ता धीरे-धीरे सख्त बनती गयी, यहाँ तक कि उसमें अब क्रूरता झलकने लगी।

सामन्त बनवीर के इस भाव-परिवर्तन को देखकर प्रसन्न हुए। उनकी दृष्टि में इस समय चित्तौड़ के लिए एक ऐसे ही महाराणा की आवश्यकता थी, जो बात का धनी हो, मेवाड़ के गौरव की रक्षा के लिए कृत-संकल्प हो, और यदि काम पड़े, तो समय पर क्रूरता का भी प्रदर्शन कर सके। सामन्तों को इस बात से हर्ष हुआ कि संग्रामसिंह के बाद वे आज एक महान् योद्धा को चित्तौड़ के सिंहासन पर विराजमान देख रहे हैं! आज तक बनवीर उनको परामर्श देनेवाला मात्र एक सहकारी था। सिंहासनारूढ़ होने के बाद अब वह उनको आज्ञा देनेवाला, अपनी आज्ञा का पालन करानेवाला, और अपने आदेश को न माननेवाले को कठोर दण्ड देने की क्षमतावाला नृपति बन गया!

★

वीरतापूर्वक मुग़ल बादशाह बाबर का सामना करनेवाला महाराणा संग—साँगा या संग्रामसिंह हिन्दुओं का सम्राट् बनकर, हिन्दू-पद-बादशाही को पुनः स्थापित करने का स्वप्न देखता हुआ चला गया! उसकी मनोकामना पूरी न हुई। अस्सी व्रणों को अपने शरीर पर धारण करनेवाले उस महावीर की मृत्यु के बाद उसके महान् कार्य को सम्पादित करने की शक्ति रखने योग्य उसका कोई भी उत्तराधिकारी न रहा। यों तो उसके पुत्र थे; वे गद्दी पर भी बैठे; और आरम्भ में ऐसा प्रतीत भी हुआ कि वे अपने पिता की कीर्ति क़ायम रखेंगे। परन्तु संग्राम के ये पुत्र निकम्मे निकले। विक्रमादित्य ने तो अपने अविचारपूर्ण आचरण से साँगा की धवल कीर्ति में धब्बा लगाया, और मेवाड़ की स्थिर स्थिति को डाँवाडोल कर दिया।

सामन्तों की स्वामिभक्ति की भी मर्यादा होती है। उनकी दृष्टि में राणाजी अवश्य उनके शिरछत्र थे, मुकुटमणि थे, अधिपति थे! परन्तु कब तक? मेवाड़ की कीर्ति को कायम रखें, तभी तक। मेवाड़-मही तो उन सब की जननी थी!

यदि राणा मेवाड़ की रक्षा न कर सकें! मेवाड़ की उज्ज्वल कीर्ति

को कलंकित करें, तब ?

राज्य की सत्ता सामन्तगण अपने हाथ में ले लेते, और ऐसे राणा को गद्दी से नीचे उतार देते। मेवाड़ को खो देनेवाला राणा गद्दी पर रह नहीं सकता! मेवाड़ को तो चाहिए बाप्पा रावल का-सा राणा, जिसने विदेशियों को भारत से बाहर निकाल दिया, और उनके पीछे ईरान तक जाकर, वहाँ भयंकर युद्ध किये! मेवाड़ सादर याद करता था समरसिंह को, जिसने स्वदेश की रक्षा के लिए पानीपत की रणभूमि में अपने प्राणों की बलि चढ़ाई। मेवाड़ को गर्व था अपने हम्मीर, कुम्भा और संग्राम पर! इन महान् वीरों की नामावली को लज्जित करनेवाला कोई भी सिसोदिया मेवाड़ के सिंहासन पर बैठ नहीं सकता था। भले ही वह राजपुत्र क्यों न हो!

विक्रमादित्य संग्राम का पुत्र था। परन्तु इससे क्या? राजकार्य वह सँभाल न सका। शत्रुओं के आक्रमण का वह सामना न कर सका, और अपनी निष्फलता का रोष उसने स्वामिभक्त सामन्तों पर निकाला। सामन्तों की दृष्टि बदल गयी—उग्र बनी। उन्हें ऐसा राणा नहीं चाहिए। भले ही वह संग्राम का पुत्र हो! गद्दी भ्रष्ट करनेवाले ऐसे कुपुत्र को गद्दी पर रहने देना, मेवाड़ माता के लिए हितकर न था!

सामन्तों की दृष्टि संग्राम के भतीजे बनवीर की ओर गयी। अनेक प्रसंगों पर, उनको बनवीर की बुद्धि, निःस्वार्थता, देशभक्ति और वीरता का परिचय मिल चुका था। उन्होंने बनवीर से प्रार्थना की कि इस विषम परिस्थिति में वह मेवाड़ का राजतंत्र अपने हाथ में ले।

बनवीर ने सामन्तों की इस प्रार्थना को अस्वीकार किया। उसकी दृष्टि में सिंहासनारूढ़ नृपति के आदर्श कुछ और ही थे। मेवाड़ के उत्कर्ष के लिए मेवाड़पति को क्या-क्या करना चाहिए, इस विषय में उसकी अपनी निर्धारित की हुई, अनेक योजनाएँ थीं, जो राजकुटुम्ब के अन्य व्यक्तियों को कभी पसन्द न आतीं। बनवीर ने मेवाड़ की गद्दी पर बैठना अस्वीकार कर दिया।

परन्तु सामन्तों को बनवीर के अतिरिक्त और कोई ऐसा राजपुरुष दृष्टिगोचर न होता था, जो मेवाड़ की डगमग नौका को सँभाल सके। उन्होंने अपना आग्रह क़ायम रखा। अन्त में बनवीर ने सामन्तों के आग्रह को मान्यकर, मेवाड़ के काँटों-भरे राजमुकुट को धारण करना स्वीकार कर लिया। उसी दिन प्रातःकाल सामन्तों ने संग्राम के पुत्र विक्रमादित्य को पद-भ्रष्ट किया, और सायंकाल के समय संग्राम के भतीजे को सिंहासन पर बिठाया।

सामन्तों की उपस्थिति में बनवीर ने राजमुकुट धारण किया। मुकुट धारण करते ही उसके मुख का भाव बदल गया। एक अद्भुत प्रकार की दृढ़ता उसके मुख से झलकने लगी। सामन्तगण इस परिवर्तन को देखकर प्रसन्न हो गये। बनवीर की मुखमुद्रा में प्रकाशित लौह निश्चय का उन्होंने स्वागत किया।

राज्याभिषेक की विधि पूर्ण होने पर, दरबार विसर्जित हुआ। कुछ बातचीत करते हुए सामन्त दरबार-गृह में रह गये। कार्य पूरा होने पर उनमें से कई अपने-अपने स्थान को लौट गये। महाराणा बनवीर दरबार-गृह से निकलकर सीधा राजमहल में पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही उसने अपनी तलवार को म्यान से बाहर निकाला। महाराणा के अंग-रक्षक इस कार्य से चकित हो गये, परन्तु अपना कर्त्तव्य याद आते ही, उन्होंने भी, महाराणा की रक्षा के लिए, अपने शस्त्र हाथ में ले लिये।

सर्वसम्मति से मेवाड़ी सामन्तों ने जिसे अपना महाराणा चुना, उसे तुरन्त तलवार निकालने की क्या आवश्यता पड़ी, यह आरम्भ में अंग-रक्षकों की समझ में नहीं आया। मेवाड़ की सीमा को दिल्ली तक ले जाने के अपने दृढ़ निश्चय के प्रतीक रूप तो उन्होंने तलवार को नहीं निकाला? भूतकाल में कितने ही सिसोदिया महाराणाओं की तलवार जीवन-पर्यन्त म्यान से बाहर ही रही! क्या बनवीर भी उसी राज-मार्ग पर अग्रसर हो रहा है?

बनवीर अब चित्तौड़ के राजमहल का स्वामी बन गया था। महल

के प्रत्येक भाग में निर्बाध होकर जाने का उसे अधिकार था। वहाँ का एक-एक पत्थर उसका देखा हुआ, परिचित था। परन्तु उसने तलवार क्यों निकाली।

२

हाथ में नंगी तलवार लेकर बनवीर राजमहल में घुस गया। वहाँ के दास-दासियों ने उसको प्रणाम किया। उनके सत्कार का ज़रा भी खयाल किये बिना वह महल के एक विशेष भाग में पहुँच गया। वहाँ एक सजाये हुए कक्ष के द्वार पर पहुँचकर, वह कुछ क्षणों के लिए रुक गया।

अंगरक्षकों को महाराणा के इस व्यवहार पर आश्चर्य हुआ। आस-पास घूमनेवाला अनुचर-वर्ग भी अवाक् हो गया।

'इस खण्ड में कौन है?' बनवीर ने पूछा।

'महाराणा विक्रमादित्य....' एक अंगरक्षक ने उत्तर दिया।

'अभी तक तुम्हारे खयाल में विक्रमादित्य ही महाराणा है?' बनवीर ने तिरस्कार प्रदर्शित करते हुए पूछा, और द्वार को धक्का देकर खोल दिया।

एक ऊँची गद्दी पर, पद-भ्रष्ट महाराणा विक्रमादित्य एक हाथ पर अपना मस्तक रखकर बैठा हुआ था! उसका मन पूर्णरूप से विह्वल था। इतना भी सोचने की उसे स्थिरता न थी कि बन्दी बनाकर वह किस स्थान पर रखा जायेगा। उसके मुख पर निराशा, व्याकुलता और असहायता से भाव स्पष्ट रूप से व्यक्त थे!

द्वार खुलते ही, विक्रमादित्य ने देखा कि सामने, हाथ में नंगी तलवार लिये बनवीर अन्दर आ रहा है! विक्रमादित्य भय से स्तब्ध रह गया। पास ही में रखी, अपनी तलवार भी वह उठा न सका। शून्य आँखों से वह बनवीर को देखता रहा।

बनवीर ने विक्रम के निकट पहुँचकर, ज्यौंही अपनी तलवार उठायी,

त्योंही एक अंगरक्षक ने ऊँची आवाज़ में कहा—हाँ, हाँ, महाराज ! यह क्या कर रहे हैं ? यह तो राजदेह है....भले ही पद-भ्रष्ट हो ! राज-देह पर हाथ उठाना उचित नहीं !

'तुम दरबार में उपस्थित थे न ?' कुछ रुककर बनवीर ने पूछा ।

'हाँ, जी !' रक्षक ने कहा

'याद है, मैंने कहा था कि किसी भी प्रकार का विरोध मैं सहन न करूँगा ?'

'हाँ, जी !'

'तब इसी क्षण मैं तुम्हें अंगरक्षक-पद से पृथक् करता हूँ । चले जाओ यहाँ से !' कहकर बनवीर विक्रम के अधिक निकट पहुँचा, और उसने पुनः अपनी तलवार उठायी ।

वह अंगरक्षक वहीं खड़ा था । उसने बनवीर को पुनः रोका—मैं भले ही अंगरक्षक न रहूँ; पर मेरा सामन्त-पद अभी सुरक्षित है ।

'इस स्थान को छोड़कर अभी ही चले जाओ....मेरी आज्ञा है । नहीं तो तुम्हीं मेरी तलवार की बलि बन जाओगे ।' बनवीर ने क्रुद्ध होकर कहा ।

अपमान को सहन करके न जाने क्यों अंगरक्षक का कार्य करने-वाला वह भील सामन्त रत्नसिंह चुपचाप उस खण्ड से बाहर निकला। बाहर खड़े हुए भील नौकर को उसने संकेत से कुछ कहा और दूसरे द्वार पर तुरन्त आ जाने का आदेश देकर अदृश्य हो गया । बनवीर ने पुनः तलवार उठायी ।

'परन्तु महाराज ! शस्त्रहीन का वध ?' दूसरे अंगरक्षक ने कहा ।

बनवीर ने अपनी तिरस्कार-भरी दृष्टि से सबको देखा, और उस रक्षक के प्रश्न का उत्तर दिये बिना ही विक्रम पर तलवार का प्रहार किया । शून्य बनकर बैठा हुआ विक्रमादित्य शून्यता में लीन हो गया । उसका मस्तक धड़ पर लटकने लगा और प्राणरहित देह गद्दी पर गिर पड़ी । रुधिर का फव्वारा उठा !

दास-दासियों ने रोना शुरू कर दिया। देखते-ही-देखते विक्रम के वध की खबर महल के अन्य भागों में भी फैल गयी, और सर्वत्र भय का वातावरण छा गया। इसी समय, महल के दूसरे छोर पर स्थित एक कक्ष का द्वार खुला, और उसमें से निकलकर एक युवती ने भागनेवाले नौकरों से पूछा—क्या है? यह कोलाहल क्यों हो रहा है?

'बात मुख से निकलती नहीं, पन्ना! नये महाराणा ने विक्रमादित्य को मार डाला।'

'क्यों?'

'साँगा का पुत्र यदि जीवित रहा तो किसी समय भी बनवीर के विरुद्ध खड़ा होकर गद्दी छीनने का प्रयत्न कर सकता है....इस समय अधिक बात करने का मौका नहीं....मुझे भागने दो।' कहता हुआ वह नौकर वहाँ से भाग गया।

पन्ना ने कक्ष के द्वार बन्द कर लिये। उसका हृदय व्याकुल हो गया। महाराज संग्रामसिंह के शिशु-पुत्र उदयसिंह की वह दाई थी। अनेक प्रकार के विचार उसके मन में उठने लगे। उसका अपना पुत्र और उदयसिंह इस समय साथ-साथ सोये हुए थे। उनको न राज्याभिषेक की परवाह थी, न विक्रम के वध की चिन्ता! राजदरबार के दाँव-पेंच, षड्यन्त्र और क्रूरता से सदा दूर रहनेवाले ये दोनो बालक प्रगाढ़ निद्रा में सोये हुए थे।

संग्रामसिंह का वंशोच्छेद करने पर तुला हुआ बनवीर उदयसिंह को खोजता हुआ यदि इस खण्ड में पहुँच जाये, तब क्या करना चाहिए? पन्ना की विकलता बढ़ने लगी।

प्रातःकाल जब उसने विक्रमादित्य के पद-भ्रष्ट होने का समाचार सुना था, तभी से वह अशान्त थी। उदय के—साँगा के सब से छोटे पुत्र के—अधिकार का किसी ने भी विचार नहीं किया। बच्चों के सिर पर संकट झूम रहा है, यह समझकर पन्ना ने उन दोनो को नशे की गोली खिलाकर जल्दी ही सुला दिया था!

खण्ड के बाहर रोने की आवाज़ बराबर आ रही थी, और लोगों की दौड़-धूप बढ़ती जाती थी। बालकों को लेकर भाग जाना असम्भव था। उदयसिंह को तो किसी भी प्रकार बचाना ही चाहिए। पन्ना ने निश्चय किया। उदय के प्रति मातृत्व और स्वामिभक्ति की भावना तीव्र रूप से जाग्रत हो गयी। एक-एक क्षण उसके लिए बहुमूल्य था!

पास ही, फल का एक बड़ा-सा करण्डक पड़ा हुआ था। पन्ना ने फल बाहर निकाल लिये, उसमें एक कोमल गद्दी बिछायी और खूब सँभालकर उदय को उसमें सुला दिया। नशे के कारण बालक की नींद टूटी नहीं। तब भी कहीं वह जाग न जाये, इस भीति ने पन्ना को विकल कर दिया। परन्तु मन को कड़ा करके उसने अपने खण्ड के द्वार को पुनः खोला।

'मेरा एक काम नहीं करोगे ?' उधर से भागनेवाले भील-रक्षक रूपा से पन्ना ने विनती की।

'परन्तु मैं तो अपने नायक रत्ना के पास जा रहा हूँ!' रूपा ने उत्तर दिया।

'तब तो और भी अच्छा! इस करण्डक को लेते जाओ। नदी के किनारे घड़ी-दो घड़ी रुककर मेरी प्रतीक्षा करना।' पन्ना ने कहा।

'इस करण्डक में है क्या ?'

'मेरे भाई हो न ? इस वक्त कुछ पूछो मत। जी की तरह इसकी रक्षा करना। तुम्हें बहिन का आशीर्वाद मिलेगा।' पन्ना की आर्जव-भरी विनती ने भील के हृदय को आर्द्र कर दिया। जिस पुरुष में पुरुषत्व का थोड़ा भी अंश हो, वह बहिन बननेवाली नारी का तिरस्कार कर नहीं सकता। पन्ना ने जल्दी से करण्डक उठाकर रूपा के हाथ में दे दिया, और वह भील उसे अपने कन्धे पर रखकर देखते-ही-देखते वहाँ से अदृश्य हो गया!

उसी समय पन्ना के कक्ष की ओर कोलाहल बढ़ता हुआ सुनायी दिया। उसने देखा कि सामने से हाथ में रुधिर-भीगी तलवार लिये

बनवीर दौड़ता आ रहा है! पन्ना तुरन्त ही खण्ड के अन्दर आयी, और उसने द्वार बन्द कर लिये। अर्गला बन्द होने के पहले ही किसी ने द्वार पर ज़ोर से प्रहार किया, और वह खुल गया। तलवार लिये हुए भयंकर मुख-मुद्रावाला बनवीर पन्ना के सामने आकर खड़ा हो गया। दोनो ने एक-दूसरे की ओर देखा! क्षण-भर के लिए पन्ना का शरीर काँप उठा। कुछ स्वस्थ होने पर उसने बनवीर को नमस्कार किया।

'पन्ना!' बनवीर ने सम्बोधन किया।

'जी!'

'उदय कहाँ है?'

'क्या काम है, महाराज!'

'काम का पता तुमको अभी ही लगेगा....पहले यह बताओ कि वह है कहाँ?'

'उस पलंग पर सोये हैं।'

'अब वह सदा के लिए वहीं सोता रहेगा।' कहकर बनवीर पलंग की ओर बढ़ा।

पन्ना मार्ग के बीच में आकर खड़ी हो गयी। उसी समय बनवीर का एक अंगरक्षक खण्ड के भीतर आया।

'महाराज! उदय को मारना है?' पन्ना ने पूछा।

'हाँ!' बनवीर ने कहा।

'एक राजहत्या की; अब दूसरी बालहत्या करके गद्दी पर बैठना है?'

'गद्दी पर तो मैं बैठ चुका हूँ। उसी गद्दी की रक्षा के लिए बाल-हत्या करनी पड़ेगी।'

'महाराज! कुटुम्बियों को मारने से गद्दी की रक्षा हो जायेगी?'

'पन्ना! रास्ते से हट जाओ, नहीं तो मुझे स्त्री की हत्या भी करनी पड़ेगी।'

'आज तक तो यह नहीं सुना कि मेवाड़ के किसी राणा ने कभी किसी स्त्री की हत्या की हो।'

'मेवाड़ की गद्दी की क़ीमत हम सब लोगों के जीवन से कहीं बढ़-कर है। उस गद्दी की प्रतिष्ठा रखने के लिए, राजकुटुम्ब तो क्या, राज-राणा को भी अपना मस्तक अर्पण करना पड़े, तो कोई बड़ी बात नहीं। विक्रम को मैंने नहीं मारा; उसका वध किया है मेवाड़ के कुलदेवता ने! उदय को मारने बनवीर नहीं आया है; मेवाड़ की कीर्तिदेवी इस कार्य के लिए स्वयं आकर खड़ी हो गयी हैं।'

'मेवाड़ की कुलदेवी या कीर्तिदेवी बालकों का भक्षण करनेवाली डायन नहीं!'

'जब तक संग्रामसिंह की एक भी सन्तान जीवित रहेगी, मेवाड़ की गद्दी अस्थिर रहेगी। अस्थिर राजसिंहासन कभी कीर्ति प्राप्त नहीं कर सकता! मैंने सिंहासन स्वीकार किया है, उसे कीर्ति प्राप्त कराने के लिए! बीच में से हट जा!'

'मैं कभी नहीं हटूँगी....' कहती हुई पन्ना को बलात् हटाता बनवीर पलंग के पास पहुँच गया। बालक पर आच्छादित वस्त्र को उसने दूर कर दिया, और आँखें खोलकर मानो हँसने की तैयारी कर रहे उस कोमल शिशु की छाती में तलवार भोंक दी। क्षण-भर तड़पकर, बालक के प्राण-पखेरू उड़ गए।

पन्ना ने अपनी आँखें बन्द कर लीं; उसके मुख से भयंकर चीत्कार निकली, और वह ज़मीन पर बैठ गयी। उसने जब आँखें खोलीं, तब बनवीर को कक्ष के बाहर जाते हुए देखा। बनवीर के मुख पर उदय को मारने का सन्तोष झलक रहा था।

परन्तु उदय की रक्षा के लिए तो पन्ना दाई ने अपने ही पुत्र की आहुति दे दी थी।

३

सारा पलंग रुधिर से लथपथ हो गया। रुधिर में सना हुआ बालक निश्चेष्ट पड़ा था। निश्चेष्ट क्यों? उसके मुख पर तो मुस्कराहट अभी भी

विद्यमान थी। माता पलंग के पास आयी, और उसने ध्यान से अपने मृत शिशु को देखा। उसका हृदय दुःख से अभिभूत हो गया। उसकी आँखों से अश्रु की अविराम धारा बह चली। उसको ऐसा आभास होने लगा कि वह संज्ञा खो देगी। इतने में एकाएक उसे विचार आया—

'इस समय मेरे लिए रुदन करना अनुचित है!....रोना तो है ही ....परन्तु कुछ समय बाद! प्राण भी देना है....परन्तु ज़रा रुककर! समस्त मेवाड़ के एकमात्र राजपुत्र को बचाने के लिए, मैंने अपने पुत्र की बलि चढ़ा दी अब उसे बचाना ही नहीं, जीवित भी रखना है.... उसे जीवित रखने के लिए मुझे कुछ समय तक और जीना पड़ेगा! पुत्र को मैंने अपनी आँखों के आगे मरने दिया....उसके शव को छोड़कर ....अग्नि-संस्कार किये बिना ही ...'

इन विचारों ने पन्ना को और भी विह्वल कर दिया! हृदय ने असह्य वेदना का अनुभव किया, और आँखों से आँसुओं की घनघोर वर्षा होने लगी। कुछ क्षणों तक वह खूब रोयी। इतने ही में सहसा उसे याद आया कि उसका कर्त्तव्य दुःख में डूबकर बैठ रहना नहीं है। उसे तो मेवाड़ की राजगद्दी के उत्तराधिकारी की रक्षा करनी है। इस विचार ने उसको कुछ स्थिरता प्रदान की। उसने अपने मृत पुत्र को स्नेह-भरी दृष्टि से एक बार पुनः देखा। उसके मुख पर आये हुए बालों को बड़ी ही मृदुता से हटाया, और बड़े ही प्रेम से उसके ललाट को चूमकर वह पागल की भाँति, बलपूर्वक अपनी काया को खींचती हुई, कक्ष के बाहर निकली। आँसुओं की धारा सतत बह रही थी, उसे अपने अंचल से पोंछती हुई वह महल के बाहर दौड़ गयी!

वहाँ जितने दास-दासी थे, सब रो रहे थे। परन्तु सबसे अधिक रुदन करने का अधिकार पन्ना को ही था। गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने जिस समय चित्तौड़ को भस्मीभूत किया, उस समय संग्रामसिंह की रानी कर्णावती ने जौहर-व्रत धारण किया! अग्नि-स्नान करने के पूर्व उसने अपना शिशु-पुत्र उदय पन्ना की गोद में रखा, और तुरन्त उसे

चित्तोड़ के बाहर ले जाकर रक्षा करने की विनती की थी। उसी समय से उदय के पालन-पोषण का भार पन्ना के ऊपर था। सब लोगों को विदित था कि पन्ना बड़े ही स्नेहपूर्वक अपने सगे पुत्र से अधिक उदय का पालन करती है। अब उदय की मृत्यु उससे सहन न हो, यह स्वाभाविक था। और सब की यही मान्यता थी कि बनवीर ने उदयसिंह का भी वध किया!

यह किसे मालूम कि अपने पुत्र की बलि चढ़ाकर उदय को जीवित रखनेवाली दाई पन्ना राजमहल से निकलकर उदय के ही पीछे जा रही थी। नदी राजमहल से दो कोस दूर थी। पन्ना ने रूपा भील से इसी नदी के किनारे रुककर प्रतीक्षा करने की प्रार्थना की थी। पन्ना को इस बात की चिन्ता हो रही थी कि कहीं मार्ग में कोई व्यक्ति भावी मेवाड़पति को पहिचान न ले। इस चिन्ता में व्यग्र पन्ना, राजमहल से निकलकर, नदी की ओर दौड़ चली!

रात्रि का आगमन हो चुका था। परन्तु राजपूतों को रात्रि का भय नहीं। पन्ना दाई अवश्य थी; परन्तु वह राजपूतानी भी थी। राजकुटुम्ब का बालक पालन-पोषण के लिए राजपूत जाति की धाय के अतिरिक्त और किसी के सुपुर्द किया न जा सकता था। पन्ना को भी रात्रि का भय न लगा। उसे भय केवल एक ही बात का था कि कहीं ऐसा न हो कि उसका कार्य असफल हो जाय। वह शीघ्रता से आगे बढ़ रही थी। राज्य के प्रहरी प्रायः सभी उसको पहिचानते थे। किसी ने उसे रोका नहीं। अपने पुत्र सरीखे उदय की मृत्यु के कारण विह्वल इस धाय के प्रति सब की सहानुभूति थी। प्रहरियों ने पन्ना की इच्छानुसार उसे जाने दिया। अग्निशिखा-सी इस क्षत्राणी के हृदय में तो उदय की चिन्ता थी। बीच-बीच में उसे अपना पुत्र भी याद आता—उसकी निद्रा, उसकी मुस्कराहट और रुधिर से सना हुआ उसका शव! क्षण-दो क्षण ये विचार उसे और भी विह्वल कर देते, परन्तु तुरन्त वह इन विचारों को दबा देती, और बलपूर्वक आगे बढ़ती। अन्त में जिस नदी के किनारे

मिलने का संकेत था, वह बेरिस नदी नज़र आने लगी। अन्धःकार होने पर भी बेरिस नदी के जल में तारकगण अपने प्रतिबिम्ब डालकर एक नये आकाश-खण्ड की रचना कर रहे थे।

'कौन ?' नदी के किनारे पर स्थित एक शिवालय के चबूतरे पर से किसी ने प्रश्न किया।

'मैं पन्ना। रूपा नायक....?'

'हाँ, भीतर चली आओ।' रूपा ने कहा।

'और कोई तो नहीं है ? मेरा करण्डक....'

'सुरक्षित है, और सुरक्षित ही रहेगा।' शिवालय से उत्तर आया।

पन्ना चौंक पड़ी। शिवालय के भीतर और कौन है ? पन्ना के रहस्य को वह जान तो नहीं गया ? पाँच-छः वर्ष का बालक भला देर तक जागे बिना करण्डक में कैसे रह सकता है ? राजमहल ही में रहनेवाला रूपा उदय को न पहिचाने, यह भी असम्भव था। और यदि विश्वास-घात करके रूपा उदय को बनवीर के किसी सहायक को सौंप दे, तो ?

पन्ना का हाथ अपनी कमर में बँधी हुई कटार पर गया। कटार यथास्थान बँधी हुई थी। कटार से सज्ज होने के कारण पन्ना को हिम्मत आयी। कोई हर्ज नहीं, यदि दो के स्थान में चार व्यक्ति भी हों! पन्ना उनके बीच से उदय को बचा लेने की क्षमता रखती थी। निर्भय होकर वह शिवालय की पदावली पर चढ़ी और उसने चबूतरे पर पैर रखा।

सामने ही गद्दी पर सुलाया हुआ एक बालक उसे दृष्टिगोचर हुआ। बालक सो रहा था। उसका हृदय काँपने लगा! उदय जब तक वयस्क नहीं हो जाता, उसकी रक्षा कैसे की जायेगी ? किस सुरक्षित स्थान में उसे रखा जाये ? क्षण-भर में पन्ना के मस्तिष्क में अनेक विचार दौड़ गये। वह दौड़कर सोये हुए उदय के पास जाकर बैठ गयी।

'पन्ना! मेवाड़ तुम्हारी प्रतिमा की पूजा करेगा।' किसी अपरिचित व्यक्ति के शब्द पन्ना के कान में पड़े। पन्ना ने आँखें ऊँची कीं। उसके सामने एक भव्य आकृति खड़ी थी। पन्ना उसे पहिचान न सकी। उसने

अपनी दृष्टि दूसरी ओर घुमायी। उस ओर रात्रि के अन्धकार में भी उसने रूपा को पहिचान लिया।

'कौन है?' उस अपरिचित व्यक्ति को सम्बोधित कर पन्ना ने पूछा।

'रत्ना नायक!'

'तलवार के एक ही झटके से हाथी का मस्तक काटकर गिरानेवाला महावीर रत्नसिंह उपस्थित है-और उसके सामने राणा साँगा के पुत्र मारे जायें? नायक! कुछ समझ में नहीं आता?' पन्ना ने कहा।

'साँगा के पुत्रों का वध?....हाँ, एक विक्रमादित्य अवश्य गये। बनवीर को हमीं ने गद्दी पर बिठाया। परन्तु यह किसे खबर थी कि गद्दी पर बैठते ही बनवीर गद्दी के अन्य उत्तराधिकारियों को इस प्रकार क्रूरता से मारेगा?....खैर, उदयसिंह तो यहाँ सुरक्षित हैं ही। देखो पन्ना! जिस रुधिर से मैंने बनवीर को राजतिलक लगाया, उसी रुधिर से उदयसिंह के ललाट पर भी राजतिलक कर दिया है।' रत्नसिंह ने कहा।

'यह उदयसिंह है, यह आपने कैसे जाना?' पन्ना ने प्रश्न किया। उदय की सुरक्षा के विषय में पन्ना की चिन्ता अभी सजग थी। रत्नसिंह द्वारा लगाया हुआ रक्त-तिलक वह अवश्य देख रही थी। परन्तु जिस भील सामन्त ने बनवीर को गद्दी पर बिठाया, उसका पूरा विश्वास कैसे किया जाये?

'पन्ना! ज्योंही मुझे मालूम हुआ कि बनवीर ने विक्रमादित्य का वध किया, त्योंही मैंने उदयसिंह को बचाने की योजना बनायी, और उस योजना को कार्यान्वित करने के लिए, रूपा को यहाँ बुलाया। रूपा के साथ आये हुए करण्डक को देखकर मैं निश्चिन्त हो गया; कारण रूपा तो उदयसिंह को पहिचानता था। परन्तु पन्ना! रास्ते में मुझे यह समाचार मिला था कि बनवीर ने उदयसिंह को भी मार डाला। तो मरनेवाला बालक किसका था?' रत्ना ने पूछा।

'मेरा....अपना।' पन्ना ने उत्तर दिया।

'क्या कहा?' रूपा और रत्ना दोनों ने चौंककर पूछा।

'अपने पुत्र को मैंने वहीं उदय के स्थान पर सुला दिया था। बनवीर ने खण्ड में आते ही पूछा कि उदय कहाँ है ?....मैंने अपने बच्चे को बता दिया। बनवीर ने उसे....' पन्ना की सरल, पर अपूर्ण कहानी को सुनकर दोनो भील वीर स्तब्ध रह गये। पन्ना जिन शब्दों का उच्चारण न कर सकी, उनका भावार्थ वे समझ गये। इस धाय के धैर्य और साहस का विचार करके उसके प्रति इन महारथियों के मन में सम्मान की भावना प्रकट हुई। और इस प्रसंग का कारुण्य ! पन्ना के अबोध बालक की निर्मम हत्या का वृत्तान्त सुनकर उनके हृदय आर्द्र हो गये।

पन्ना ने अपने पल्लू से आँखों के अश्रु पोंछ डाले।

किसी के मुख से एक शब्द न निकला। कुछ देर तक मन्दिर में शान्ति छायी रही। केवल पन्ना की सिसकी कभी-कभी इस शान्त वातावरण को उद्वेलित करती थी। स्वाभिभक्ति की पराकाष्ठा का गुणगान शान्ति के समय ही हो सकता है। प्रकृति भी शान्ति के साथ मनुष्य के पाप-पुण्य की लीला को देख रही थी। प्रकृति ने राजगद्दी की स्थिरता को कायम करने के लिए दो व्यक्तियों को बलि चढ़ते देखा। एक बलि के पीछे व्यक्तिगत स्वार्थ था—यद्यपि बनवीर को शायद ही ऐसा विचार आया हो! उसकी तो धारणा यही थी कि राजगद्दी के सभी उत्तराधिकारियों के लुप्त हो जाने से भविष्य में गद्दी के लिए कोई झगड़ा या षड्यन्त्र खड़ा नहीं होगा। दूसरी बलि में अपूर्व स्वामिभक्ति के दर्शन हुए। मेवाड़ को सुदृढ़ बनाने के लिए एक राजपूत गद्दी के उत्तराधिकारियों का वध करता था; उसी महान् उद्देश्य के लिए दूसरी ओर एक राजपूतानी अपने बच्चे की बलि चढ़ाकर गद्दी के वारिस की अपने जीवन की बाज़ी लगाकर, रक्षा कर रही थी। अपने जीवन की ही बाज़ी नहीं ! पन्ना को अपने जीवन से अधिक प्रिय अपना बालक था। पुत्र के स्थान पर वह स्वयं मृत्यु का आलिंगन कर सकती थी। परन्तु उसके मरने से होता क्या ? अपने प्राण देकर क्या वह उदय को बचा सकती थी ? उसके लिए मरना सरल था, जीना बड़ा ही कठिन ! इस समय जीवित रहना उसके लिए

धर्म बन गया था। धर्म का इस प्रकार पालन करनेवाली धाय की हिम्मत और स्वामिभक्ति के सामने उन भील वीरों की स्वामिभक्ति को संकोच का अनुभव हो रहा था।

'पन्ना! उदय को जिलाकर तुमने मेवाड़ को जिलाया। यह महान कार्य मेवाड़ ही में हो सकता है।' शान्ति को भंगकर, रत्नसिंह ने कहा।

'परन्तु अब आगे?' अश्रु पोंछते हुए पन्ना ने पूछा, उदय को केवल जीवित ही नहीं रखना है; उसे मेवाड़ का अधिपति भी बनाना है।'

'मेरा घोड़ा यहीं है। दो और अश्व मैंने चित्तौड़ के भील-आवास से मँगवाये हैं। हम लोग रात में ही पच्चीस कोस की मंजिल काटकर देवलिया के सिंहराव के पास पहुँच जायेंगे। मुझे विश्वास है कि वह अवश्य उदयसिंह को अपने यहाँ छिपा रखेंगे।'

रात बढ़ रही थी। भील-आवास से मँगाये हुए घोड़ों के न आने से सब लोग चिन्तित होने लगे। इतने ही में लुकते-छिपते एक गुप्तचर ने आकर समाचार दिया कि रात्रि के समय चित्तौड़गढ़ से बाहर निकलने की निषेधाज्ञा जारी कर दी गयी है।

'कारण?' रत्नसिंह ने पूछा।

'कारण राणा की आज्ञा! राणा बनवीर का कल दरबार होगा, जिसमें सभी सामन्त और प्रजाजन को उपस्थित रहने का आदेश दिया गया है।' गुप्तचर ने उत्तर दिया।

'पन्ना! तुम और रूपा नायक आगे चलो। मैं महाराणा से स्वीकृति लेकर पीछे ही आ पहुँचता हूँ। अब जो कुछ भी करना है, वह गुप्त रूप से करना पड़ेगा—हम लोग पकड़े न जायें, ऐसा ही मार्ग अपनाना उचित होगा।' रत्नसिंह ने सलाह दी।

'परन्तु यदि सिंहराव ने आश्रय देना अस्वीकार किया, तो?' पन्ना ने पूछा।

'मेवाड़ के पर्वत तो कहीं गये नहीं?....वे हमें आश्रय देंगे! चिन्ता न करो पन्ना।' रत्नसिंह ने आश्वासन दिया। और सोये हुए बालक

उदयसिंह को लेकर पन्ना घोड़े पर बैठी। आगे बढ़ी। साथ ही में घोड़े की चाल की स्पर्धा करता हुआ रूपा नायक भी चला।

४

रात बीत गयी। प्रातःकाल हुआ। देखते-ही-देखते सूर्य की किरणों की उष्णता बढ़ने लगी। संकीर्ण पहाड़ी मार्ग को पार करने के बाद पन्ना को कुछ दूर पर देवलगाँव नज़र आया।

'रूपा! गाँव अब निकट ही मालूम होता है।'

'हाँ; अभी तक बाल महाराणा जागे नहीं?'

'अभी जागने में देर है। मेरी औषधि काम कर गयी।'

'सीधे राजगढ़ ही चलें, न?'

'ऊँहुँ, तुम उदय को लेकर यहीं बैठो। मैं पहले अकेली राणा सिंहराव के पास जाती हूँ।'

'अच्छा, मैं उस चट्टान की आड़ में बैठा रहूँगा।'

घोड़े को छोड़ पन्ना गाँव की ओर गयी। रूपा बराबर उसकी ओर देखता रहा। उसको गये हुए काफ़ी देर हुई। इस बीच उदय ने दो-तीन बार अँगड़ाइयाँ लीं और आँखें खोलने का प्रयत्न किया; परन्तु पन्ना के लौट आने तक, वह पूर्णरूप से जाग्रत न हुआ।

'क्या कहा?' पहाड़ की एक चढ़ाई पार करके पास आनेवाली पन्ना से रूपा ने प्रश्न किया।

पन्ना के मुख पर उत्साह का कोई चिन्ह न दीखा। निकट आने पर उसने उत्तर दिया—सिंहराव बालराणा को आश्रय देने के लिए तैयार नहीं।

'क्यों?'

'वह बनवीर से डरता है। राज्याभिषेक के दरबार में वह उपस्थित न हो सका, इस कारण बनवीर पहले से ही नाराज़ है। इससे पूर्व भी कुछ ऐसी बातें हो चुकी हैं, जिसके कारण दोनों में मित्राचार नहीं है

सिंहराव को इस बात का भय है कि जिस बनवीर ने विक्रमादित्य को मार डाला, उसको यदि खबर मिले कि उदय को देवलगाँव के राजगढ़ में आश्रय मिला है, तो वह सिंहराव के सारे कुटुम्ब को क़त्ल कर डालेगा।'

'तब तो उसको चाहिए कि अपना सिंहराव नाम बदल दे।'

'उससे हम लोगों को क्या लाभ होगा?....रूपा! अब हम कहाँ जायें?'

'रत्नसिंह के आने तक यहीं रुके रहें।'

'ऊँहुँ....यहाँ रुकना ठीक नहीं! कुछ दूर और आगे जाकर डूँगरपुर के यशकर्ण का आश्रय लें।'

'वह भी दूसरा सिंहराव निकला, तो?'

'जहाँ तक मेरा खयाल है, वह ऐसा नहीं करेगा। उसे यह जागीर राणा संग्रामसिंह ने ही दी है। क्या वह इस अनुग्रह को भूल जायेगा?'

'प्रयत्न कर देखो।'

पन्ना और रूपा ने पुनः अपनी यात्रा आरम्भ की। बीच में पड़नेवाले गाँव और क़स्बों की बस्तियों से बचते हुए वे आगे बढ़ते थे। उनके मन में इस बात का भय बना हुआ था कि कहीं ऐसा न हो कि कोई स्वामिभक्त नागरिक उदय के भागने के समाचार बनवीर के पास पहुँचा दे।

पहाड़ियों को पार करते हुए, रूपा और पन्ना मध्यरात्रि के समय डूँगरपुर के निकट आ पहुँचे।

'अब कहाँ जायें?' रूपा ने पूछा।

'रात तो हम लोग धर्मशाला में काटें। प्रातःकाल होने पर यशकर्ण के पास चलेंगे....तब तक वे चित्तौड़ से लौटकर आ जायेंगे।'

उस समय प्रत्येक आर्य-ग्राम में सार्वजनिक मन्दिर, धर्मशाला, कूप, सरोवर, चबूतरे और पड़ाव बने हुए थे, जिनका उपयोग सभी लोग निर्बाध होकर किया करते थे। जिस गाँव में ये सार्वजनिक स्थान न हों,

उस गाँव को सब लोग अपवित्र समझते थे। डूँगरपुर में मन्दिर आदि सभी सार्वजनिक स्थान थे। पन्ना उदयसिंह को लेकर एक धर्मशाला पहुँची। वहाँ कुछ जैन साधु, एक सैनिक और दो-चार यात्री पड़े हुए थे। एक स्थान को साफ़ करके पन्ना ने जागे हुए उदय को गद्दी पर सुलाया, और उसके पास वह भी लेट गयी। रूपा सोया नहीं। उन साधुओं और सैनिकों से बातें करता हुआ वह जागता ही बैठा रहा। अपने, पन्ना और उदय के विषय में पूछे गये प्रश्नों का उसने सन्तोष-जनक उत्तर दिया, और किसी प्रकार का सन्देह उत्पन्न न हो, ऐसी एक विश्वासोत्पादक कहानी गढ़कर सुना दी। बनवीर ने गद्दी पर बैठते ही विक्रमादित्य और उदय, दोनों को मार डाला, यह समाचार सर्वत्र फैल गया था। ये साधु और सैनिक भी इस बात को जानते थे।

'राज-पाट के दाँव-पेंच में पड़ना ही ठीक नहीं।' रूपा ने सलाह दी।

'इस दाँव-पेंच के कारण ही हम लोग साधु बनकर निकल पड़े हैं। राज और पाट !....हम लोगों को अब ऐसा लग रहा है कि सच्चे चक्र-वर्ती तो हमीं लोग हैं।' एक साधु ने कहा।

'परन्तु धन्य है मेवाड़ी राजपूत ! जब देखो तब केसर-स्नान और जौहर की बात ! परन्तु एक भी राजपूत बच्चा ऐसा न निकला, जो राजवध करने को उद्यत बनवीर का हाथ पकड़ लेता।' सैनिक ने कहा।

'कदाचित् इस कार्य में राजपूतों की सम्मति हो ! परन्तु भाई, हम लोगों को इस बात की चर्चा करने से क्या लाभ ? तुम कहाँ से आ रहे हो ?' रूपा ने कहा।

'मैं गुजरात से आ रहा हूँ।'

'कहाँ जाना है ?'

'दिल्ली—और कहाँ ? आजकल बहादुरी की क़दर और किस जगह हो सकती है ?' सैनिक ने उत्तर दिया।

'गुजरात से दिल्ली तक तुम्हारी बहादुरी की क़दर करनेवाला कोई

भी न मिला ?' रूपा ने पूछा।

'चित्तौड़ गया था।....वहाँ विक्रम और उदय के मारे जाने की बात सुनी, उथल-पुथल के ऐसे समय मेरी क़दर करने का अवकाश किसको ?' सैनिक ने उत्तर दिया।

उदयसिंह जाग गया था। नया स्थान, नया वातावरण और नयी बातचीत ने उसकी उत्सुकता बढ़ा दी थी। वह अधिक समय तक मौन धारण न कर सका, और पास ही लेटी हुई धाय से धीमी आवाज़ में उसने पूछा—पन्ना! हम लोग इस समय कहाँ हैं ?

'इस समय बोलो मत, सो जाओ। सवेरे कहूँगी।' पन्ना ने समझा-कर कहा।

'परन्तु ये लोग क्या बातें करते हैं ? मुझे मार डालने की बात कैसी ?'

'कुछ भी नहीं....सब झूठ! देखो, बोलने पर तो शायद कोई मार भी डाले!'

'क्यों ?'

'सो जाओ भाई! इस तरह घबराना ठीक नहीं। बोलो मत.... हा....हाला....भाई! सो जाओ। आप लोग मार-काट की बात करते हो जिससे मेरा यह बच्चा चौंककर जाग उठता है।' पन्ना ने उदय के धीमे स्वर में कहे हुए शब्दों को दबाने के लिए ज़ोर से बोलना शुरू किया।'

'सच है। बातचीत से भी हम लोगों को किसी का मन दुःखी न करना चाहिए।' एक जैन साधु ने कहा।

'शान्ति ही सच्चा धर्म है! ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः' दूसरे साधु ने शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया।

'इसी मंत्र के बल पर लड़ाइयाँ लड़ोगे ?' हँसकर सैनिक ने पूछा।

'हम लोगों के लिए लड़ाइयाँ कैसी ? और लड़ना कैसा ? हमारा कोई शत्रु हो, तब न उससे लड़ना पड़े ?' एक साधु ने कहा।

'सम्पत्ति, सत्ता और संसार, इन तीनों का त्याग कर के हम बैठे हैं। तब शत्रुता किस बात की? और किसके साथ?' दूसरे साधु ने कहा।

'कहाँ जाना है, महाराज?' रूपा ने बात को बदलते हुए पूछा।

'कोमलमेर।' साधु ने कहा।

'कोमलमेर? किसके पास?' सैनिक ने प्रश्न किया।

'अविनाश सेन के पास! वहाँ एक नये उपाश्रय की उद्घाटन-विधि होने वाली है।'

'वह राजपूत तो अब जैन श्रावक बन गया है न?' रूपा ने पूछा।

'जैन धर्म स्वीकारने से वह राजपूत न रहेगा?' उत्तर में साधु ने भी प्रश्न किया।

'अरे, हमारे मेवाड़ में कोई उसे अविनाश सेन के नाम से नहीं पुकारता। उसे तो सब लोग "आशा शाह" कहते और उसका उपहास करते हैं!' रूपा ने कहा।

'लोग उसे चाहे जिस नाम से पुकारें! परन्तु इतना अवश्य है कि इस अविनाश के पास पहुँचा हुआ याचक कभी खाली हाथ नहीं लौटता।' दूसरे साधु ने कहा।

'मैं जाकर उसके प्राण माँग लूँ, तो?' सैनिक ने हँसकर पूछा।

'तुम सद्पात्र होगे, तो वह अपने प्राण भी दे देगा....!'

बातें करते-करते सैनिक और साधु सो गये। उदय भी आँखें बन्द करके पड़ा रहा। नींद न आयी, तो केवल दो व्यक्तियों को—रूपा और पन्ना को!

प्रातःकाल उन दोनो ने धर्मशाला के मार्ग से बहुत से अश्वारोहियों को जाते हुए देखा।

'लगता है यशकर्ण लौट रहे हैं!' रूपा ने कहा।

'मैं सोचती हूँ कि गाँव के लोग जागें, इसके पहले ही मैं उनसे मिल आऊँ। आशा है वे मेरी प्रार्थना अस्वीकार न करेंगे!' पन्ना ने कहा। और सूर्योदय के पहले ही वह डूँगरपुर के राजप्रासाद में वहाँ

के ठाकुर यशकर्ण से मिलने के लिए जा पहुँची।

इस बीच उदय जाग्रत हो गया। उसकी प्रश्नावली कहीं फिर से शुरू न हो, और यदि आरम्भ भी हो तो उसका ठीक-ठीक उत्तर धर्म-शाला में देना उचित न था। इस विचार से रूपा नायक उदय को लेकर धर्मशाला के बाहर निकल आया, और गुलेल चलाने की शिक्षा देने के बहाने उसने उदय के ध्यान को दूसरी ओर लगा दिया।

'परन्तु चित्तौड़ में तो तुम इस प्रकार मुझे सिखाते न थे।' उदय को चित्तौड़ याद आया।

'महाराज! वहाँ मेरी नियुक्ति आपके पास तो थी नहीं। जाने दें, इस समय चित्तौड़ की बात न करें।' रूपा ने कहा।

'क्यों?'

'बनवीर ने हम लोगों के पीछे हत्यारे छोड़ दिये हैं।'

'हत्यारे कौन? हम लोगों के पीछे क्यों छोड़े हैं?'

'यह सब बाद में बताऊँगा। इस समय तो, जितना मैं कहूँ उतना ही करो।'

'और ऐसा न करूँ, तो?' रात से ही उदय का मन व्यग्र था। उसके बाल-हृदय की समझ में न आया कि वह राजमहल से क्यों हटाया गया? जब उसने देखा कि उसके नाम और स्थान को भी छिपाने का प्रयत्न हो रहा है, तब तो उसकी बेचैनी और भी बढ़ गयी। उसकी मनो-भावना अभी मानव-जीवन के असत्य-मार्ग की ओर गयी न थी; असत्य बातें कहने की आवश्यकता को उसका मृदु मस्तिष्क समझ न सका।

रूपा बड़ी कठिनाई से उदय को अन्य लोगों के संसर्ग से दूर रख-कर घूम रहा था। इतने में उसने पन्ना को जल्दी-जल्दी लौटते हुए देखा। पन्ना की तेज़ गति से रूपा के मन में आशा का संचार हुआ। उसे इस बात का पता न था कि पन्ना दूसरे ही कारण से दौड़ी आ रही थी।

आने के साथ ही पन्ना ने कहा—रूपा! यहाँ अब एक क्षण भी

रुकना ठीक नहीं इसी समय आगे चल देना चाहिए।'

'क्यों ?'

'उदय का नाम लेते ही यशकर्ण काँपने लगा। उसने आज्ञा दी कि हम लोग एक क्षण भी उसकी सीमा में न रहें।'

'हम उसकी आज्ञा न मानें, तो ?'

'तो वह हम तीनों को पकड़कर बनवीर के पास भेज देगा।'

'किसी के हृदय में स्वामिभक्ति का कुछ भी अंश शेष नहीं ?'

'स्वामिभक्ति से अधिक बनवीर का भय कलेजे में बैठ गया है! हम लोगों को तुरन्त यह स्थान छोड़ना चाहिए। हमने गाँव की हद छोड़ी या नहीं, यह देखने के लिए यशकर्ण मेरे पीछे आ रहा है।'

उदय के प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला, और उसकी समझ में न आये इस सतर्कता से पन्ना, रूपा और उदय ने पुनः पहाड़ और वनों की मुसाफ़िरी शुरू की।

५

कोमलमेर के जागीरदार अविनाश सेन जैन-मन्दिर में दर्शन करने गये थे। वहाँ से लौटने पर, अपने व्यवस्था-कार्य में लग गये। उनकी आँखों में राजपूतों की-सी कठोर लालिमा न थी, अपितु उसके स्थान पर सौम्यता, समभाव और शान्ति दीख पड़ती थी। उनके दीवानखाने में ढाल, तलवार, भाले और जिरह-बख्तर टँगे हुए अवश्य थे, परन्तु उन्हें कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया था। उनसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था आदिनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के चित्रों को। 'ॐकार' की तख्तियाँ भी कई स्थानों पर टँगी हुई थीं। आवागमन पर भी यहाँ किसी राजपूत जागीरदार के प्रासाद-जैसा कठोर नियंत्रण न था, अपितु एक प्रकार का मुक्त वातावरण था। कड़ा सैनिक नियमन यहाँ नजर न आता था। यहाँ सर्वत्र एक धनिक गृहस्थ के घर की-सी उदार अव्यवस्था दिखाई देती थी। मरना-मारना, कटना-काटना

ऐसी हिंसात्मक भावना का यहाँ सम्पूर्ण अभाव था। इस प्रासाद में आनेवाले को सर्वत्र जीने और जिलाने की, पोषण और विकसित करने की वृत्तियाँ फैली हुई दृष्टिगोचर होतीं।

कोमलमेर अवश्य एक मज़बूत क़िला था। मेवाड़ में दुर्गों में वह अजेय समझा जाता था। इस दुर्ग की रक्षा करने के लिए मेवाड़ी सैनिक सदा तैयार रहते थे। अविनाश के नेतृत्व में इन सैनिकों को पूरा विश्वास था। पूर्वपरम्परा में भेद इतना ही था कि दुर्ग के द्वार-देव हनुमान के स्थान पर गणेश स्थापित किये गये थे, द्वार-देवी भवानी की जगह लक्ष्मी की स्थापना हुई थी और रक्षपाल कालभैरव की मूर्ति को कन्दर्प का रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया गया था। शुभ्र और गेरुए रंग के वस्त्र धारण करनेवाले साधु चँवर लटकाये, मुख पर वस्त्र का टुकड़ा टाँके ग्राम-जनता के वैविध्य को बढ़ा रहे थे। यहाँ की पहाड़ियाँ भी हरी-भरी थीं।

'महाराणा बनवीर ने अपनी अप्रसन्नता का पत्र भेजा है!' दीवान ने जागीरदार अविनाश से कहा।

'मुझे लगता ही था कि महाराणा अप्रसन्न होंगे।' अविनाश को इस समाचार से आश्चर्य न हुआ।

'आपने ऐसा क्यों किया?'

'मैंने कोई अनुचित बात नहीं कही। हम बुलाकर उनको राजगद्दी पर बिठायें और वह बैठते ही राजपुत्रों का वध करें? मुझसे बनवीर का यह कार्य सहन न हुआ। मैंने अपना विरोध उनके सम्मुख प्रदर्शित भी कर दिया, और दूसरे दरबार के लिए मैं रुका नहीं।'

'अब क्या करना?'

'महारणा के पत्र को मस्तक पर चढ़ा लो और क्या? यह समझ में नहीं आता कि विक्रमादित्य और उदयसिंह दोनों के वध की ख़बर हमलोगों को तत्काल क्यों नहीं दी गयी? महाराणा ने यह ठीक नहीं किया। गद्दी पर बैठते ही राज-रुधिर बहाना सर्वथा अनुचित था!'

'यदि आपकी जागीर पर कोई झंझट आये, तो ?

'अँहँ ! मेरे विरुद्ध हाथ उठाना सरल काम नहीं !'

'यह कैसे कहा जाये ? वे मालिक हैं, जो चाहे सो करें ! जो अपने दो भतीजों का वध कर सकता है, वह मेरा और आपका क्या नहीं कर सकता ?'

'मुझे हाथ लगाना सहज नहीं। मेरा धन चित्तौड़ के सैनिकों-जैसा ही सुदृढ़ माना जाता है।' अविनाश ने उत्तर दिया।

उसी समय एक द्वारपाल ने आकर निवेदन किया कि एक अपरिचिता आश्रय माँगती हुई द्वार पर खड़ी है।

'उसे जो माँगे सो दो। सदाव्रत में अनुकूल न हो तो....' जागीरदार ने आज्ञा दी। अविनाश से आशा शाह बने हुए जागीरदार ने दुर्ग में अनेक अन्नक्षेत्र स्थापित किये थे।

'वह तो आपके दर्शन करना चाहती है।' द्वारपाल ने कहा।

'इस समय मैं काम कर रहा हूँ।'

'यह मैंने कहा। परन्तु उसकी तो प्रार्थना है कि,सब काम छोड़कर महाराज पहले उसे दर्शन दें। वह तो कहती है कि उसके जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित है।'

'मेरे द्वार पर मृत्यु न चाहिए। बुला लाओ।' जैन-धर्म को अंगीकार करनेवाले राजपूत अविनाश ने कहा।

अविनाश ने मद्य-मांस का त्याग किया था। शिकार करना भी छोड़ दिया था। जागीरदार होने के कारण उसे सेना अवश्य रखनी पड़ती थी, और समय-समय पर महाराणा के दरबार में उपस्थित होकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ती थी। वह महान् योद्धा था, और अनेक युद्धों में अपनी वीरता का प्रदर्शन भी कर चुका था। आवश्यकता पड़ने पर शस्त्र धारण करके उसे चित्तौड़ भी जाना पड़ता था। परन्तु पिछले दस वर्ष से वह हिंसा को घृणित समझने लगा था, और शस्त्रों के प्रति उसे विराग हो गया था। जैन धर्म के आचार-विचार की ओर उसकी

श्रद्धा बढ़ती जाती थी, इसी लिए उपवास, दर्शन, पूजा-पाठ, जीव-दया और दान के कार्यों में ही सदा रत रहता था।

राजपूतों में-और सैनिकों में अविनाश के इस हृदय-परिवर्तन का उपहास हुआ करता था। कोई कहता कि अविनाश राजपूत न रहकर बनिया बन गया है! कोई कहता कि वह अब जागीरदार न रहा। वह तो एक साहुकार बन गया है! वीर योद्धा के स्थान पर चींटी के द्वार पर आटा गिरानेवाला बक्काल बन गया है! शस्त्रालयों का शौक छोड़कर शास्त्रालय निर्मित करानेवाला 'भाव' बन गया है! और इस प्रकार राजपूत-समाज में वह धीरे-धीरे आशा शाह के नाम के पुकारा जाने लगा!

आध्यात्मिकता की ओर जानेवाले अविनाश को राजपूतों के इस व्यवहार से ज़रा भी दुःख न हुआ। अपने नये नाम को सुनकर उसे क्रोध न आया। अपितु उसने स्वयं अपने को 'आशा शाह' कहना शुरू किया। परन्तु अभी तक मेवाड़ की प्रजा उसके पूर्वकालीन युद्ध-पराक्रम और असाधारण साहस को पूर्णरूपेण भूली न थी। मेवाड़ के पटावतों में—सामन्तों में—उसका अग्रस्थान था। विक्रमादित्य को पद-भ्रष्ट करके बनवीर को गद्दी पर बिठाने की योजना में उसका पूरा हाथ था।

जीवन-मरण का प्रसंग लेकर आयी हुई युवती को द्वारपाल ने अविनाश के सम्मुख उपस्थित किया। युवती ने अविनाश को नमस्कार किया। अविनाश ने उसकी ओर देखा और नमन का स्वीकार करके पुनः अपनी आँखें नीची कर लीं। सुन्दर स्त्रियों की ओर देखना उचित नहीं, ऐसी मान्यता रखनेवाले इस गृहस्थ-ब्रह्मचारी को याद आया कि इस युवती को उसने कहीं देखा अवश्य है।

'कहो बहिन! कहाँ से आ रही हो?'

'चित्तौड़गढ़ से।'

'मैंने आपको कहीं देखा है?'

'देखा है, चित्तौड़ के राजमहल में।'

'यहाँ कैसे आना हुआ?'

'यह कहने के लिए ही आयी हूँ। परन्तु मैं कुछ कहूँ, इसके पहले आप द्वारपाल को यहाँ से हटा दें।'

'अच्छा।' आँख के इशारे से अविनाश सेन ने द्वारपाल को वहाँ से चले जाने की आज्ञा दी।

'और अपने मंत्रीजी से भी कहें कि वह कुछ क्षणों के लिए मुझे और आपको अकेला रहने दें।'

'मेरी कोई भी बात मंत्री से छिपी नहीं है; वह तो एक प्रकार से मेरा हृदय ही है।'

'मेरे विषय में उस हृदय को भी कुछ देर के लिए अलग रखना पड़ेगा।'

'परन्तु मैं एकान्त में किसी पर-नारी से मिलता नहीं।'

'आप राजपूत भी हैं, और जैन भी हैं न?'

'हाँ, मैं दोनो हूँ।'

'राजपूत पर-नारी को बहिन मानते हैं। भाई-बहिन के अकेले रहने में कोई आपत्ति नहीं।'

'परन्तु....'

'और जो जैन है, वह जितेन्द्रिय अवश्य होगा। स्त्री के साथ एकान्त में उसे ज़रा भी भय नहीं लग सकता—यदि वह सच्चा जैन है, तो!'

'दीवानजी! आप ज़रा बाहर बैठें।' दीवान को मृदुता से अविनाश ने कहा। इस युवती स्त्री के व्यवहार पर दीवान को आश्चर्य हुआ, और उस खण्ड से बाहर जाते-जाते उसने दो-तीन बार कड़ी नज़र से उसे देखा। चित्तौड़ की ओर से यह कोई नयी आपदा तो नहीं आयी, उसके मन में विचार आया।

'अब कहो, चित्तौड़गढ़ से इतनी दूर, मुझे खोजते हुए, क्यों आना पड़ा?' अविनाश ने पूछा।

'मैं आपसे कुछ कहूँ, इसके पहले आपसे एक वचन माँगती हूँ।'

'कैसा वचन?'

'यही कि मेरी बात मेरी इच्छानुसार आप गुप्त रखेंगे।'

'गुप्त रखने योग्य होगी तो हम अवश्य गुप्त रखेंगे।'

'शर्त के साथ वचन न चाहिए। एक क्षत्रिय वीर और एक दयालु जैन के रूप में आपको दुःख की मारी इस अबला की प्रार्थना स्वीकार करनी ही पड़ेगी।'

'कहो, आपकी बात गुप्त रखेंगे। व्यक्तिगत पाप-पुण्य का कोई प्रश्न है ? या किसी राज-प्रसंग को लेकर आयी हैं ?'

'राज-प्रसंग ही ! व्यक्तिगत पाप का प्रश्न होता, तो मैंने कटारी का आश्रय लिया होता। इस समय तो चित्तौड़ की गद्दी के सच्चे उत्तराधिकारी को लेकर मैं यहाँ आयी हूँ। कोई उसकी रक्षा करने को तैयार नहीं होता। मैं चाहती हूँ कि उसे आपकी गोद में रख दूँ !'

अविनाश-जैसा स्थिर हृदयवाला पुरुष भी इस बात को सुनकर चौंक पड़ा ! कुछ स्वस्थ होकर उसने पूछा—बाई ! तुम किसी भ्रम में तो नहीं पड़ गयी हो ?

'नहीं जी ! मैं बिल्कुल सच बात आपसे कह रही हूँ।'

'गद्दी के वारिस तो दोनो गये। विक्रम औ....'

'उदय नहीं, केवल विक्रम !'

'मैं अपनी आँखों से देखकर आ रहा हूँ।'

'क्या ?'

'विक्रम और उदय, दोनों के अग्निदाह।'

'उदय तो मेरे पास है।'

'तब यह जो कहा जाता है कि बनवीर ने बाल राज पुत्र को मारा—यह झूठ है ?'

'हाँ ! बनवीर ने उदय को नहीं, दूसरे बालक को मारा।'

'दूसरा बालक ? किसका ?'

'मेरा।'

अविनाश को अधिक आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—तुम्हारा नाम ?

'पन्ना।'

'उदय की धाय?'

'हाँ जी!'

'तुम्हारा बालक कैसे मरा?'

'ज्योंही मुझे विक्रमादित्य के मारे जाने की खबर मिली, मैंने छिपाकर उदयसिंह को चित्तौड़ के बाहर भेज दिया, और....'

'और....?' पन्ना के अधूरे वाक्य को पूरा कराने की इच्छा से अविनाश ने पूछा।

'और जब बनवीर उदय को खोजते हुए उसके कक्ष में आये तब उदय की जगह मैंने अपने बालक को बता दिया। बनवीर ने दौड़कर उसकी छाती में अपनी तलवार भोंक दी। पुत्र की मृत्यु अपनी आँखों से देखकर आयी हूँ!' पन्ना ने कम्पित स्वर में उत्तर दिया।

अविनाश ने पन्ना के मुख की ओर देखा। राजपुत्र के स्थान पर अपने पुत्र की बलि चढ़ानेवाली इस वीर रमणी के मुख पर असत्य की एक रेखा भी नज़र न आयी।

'पन्ना! सचमुच हम लोग जो न कर सके, वह तुमने कर दिखाया।' अविनाश ने कहा।

'अब आगे जो मैं नहीं कर सकती, उसे आप पूरा करें।'

'देखो पन्ना! तुम जितना कहो उतना धन मैं तुमको दूँ, उससे मेवाड़ी सीमा के बाहर उदय को ले जाकर उसका पोषण करो।'

'मैं उसको मेवाड़ के बाहर ले जाऊँ?'

'इसके अतिरिक्त और दूसरा मार्ग ही क्या है? बनवीर को ज़रा भी शंका होती है, तो वह सामन्तों के ऊपर आपत्ति का पहाड़ ढहा देता है।'

'सामन्तों को सत्य चाहिए....अथवा सुरक्षा?'

'सत्य की रक्षा करने के लिए भी सुरक्षा की आवश्यकता पड़ती है।'

'मैंने सोचा था कि कोमलमेर के दुर्ग में एक छोटा-सा बालक और

एक छोटा-सा सत्य अच्छी तरह सुरक्षित रहेगा।'

'बनवीर के साथ यों ही मेरा मनमुटाव शुरू हो गया है। उसे मेरे विषय में ज़रा भी शंका हुई, तो....'

'तो क्या करेगा?'

'देखा नहीं, गद्दी के दोनों वारिसों को उसने क़त्ल कर दिया?'

'दो नहीं, एक! अभी भी भूल रहे हो?....क़त्ल को टुकुर-टुकुर देखनेवाले सामन्तों के विषय में मैं क्या कहूँ?'

'इस बात की कल्पना भी न थी कि बनवीर को गद्दी पर बिठाने पर वह प्रातःस्मरणीय राणा साँगा के पुत्रों को मार डालेगा।'

'अब कल्पना करें इस बात की कि महाराणा साँगा का एक जीवित पुत्र गद्दी पर बैठेगा।'

'मुझे अब राज-कार्य में कोई रस नहीं रहा। राज्य के दाँव-पेंच, झगड़े और निरर्थक संघर्ष मुझे अच्छे नहीं लगते। मैं तो चाहता हूँ कि शान्तिपूर्वक अपने धर्म का पालन करूँ।'

'यदि धर्म का पालन करना चाहते हो तो, बेटा! उदयसिंह को अपने यहाँ आश्रय दो, और अपने पास रखो।' अविनाश की गद्दी के पीछे एक द्वार में से निकलकर एक मध्य वय की सन्नारी ने कहा।

पन्ना और अविनाश दोनों चौंक पड़े। जिस बात को गुप्त रखना था, उस बात को अविनाश की माता ने द्वार के पीछे खड़े रहकर सुन लिया था। अविनाश की बात सुनकर, उनको ऐसा आभास हुआ कि धर्म और शान्ति का बहाना बनाकर, उनका पुत्र कायर हुआ जा रहा है! उसकी कायरता दूर करने के लिए उन्होंने बोलना आवश्यक समझा।

'मा! आप यहाँ कैसे आयीं?' अविनाश ने पूछा।

'यही समझो कि ईश्वर ने मुझे भेज दिया।' माता ने उत्तर दिया।

उदय को छिपा रखने का स्थान खोजते-खोजते, दो जगहों से मिली हुई निराशा रूपा और पन्ना को विचलित न कर दे, इस उद्देश्य

से रत्नसिंह चित्तौड़ से चलकर शीघ्र ही उनसे मिला, और उसने कोमलमेर के आशा शाह के पास जाने की सूचना दी। अविनाश—आशा शाह और रत्नसिंह एक समय के बराबरी के युद्ध-मित्र थे। रत्नसिंह को मालूम था कि अविनाश युद्ध-कार्य और राज-प्रपंच को घृणा की दृष्टि से देखने लगा है। अतः उसके पास पन्ना को भेजा, और स्वयं अविनाश की माता के पास जाकर पन्ना तथा अविनाश की बातों को सुनने का आग्रह किया। रत्नसिंह जानता था कि अविनाश अपनी माता का बड़ा भक्त था और उनकी आज्ञा का कभी उल्लंघन न करता था।

'रखने में बहुत भय है, मा।'

'बेटा! यों तो जीवन ही भय-रूप है।'

'मैं शान्तिपूर्वक जीना चाहता हूँ।'

'तो शान्ति से मर न सकोगे। अशान्त मृत्यु में आत्मा की अवगति होती है, यह भूलना नहीं!'

'यह बात छिपी नहीं रहेगी, प्रकट हो ही जायेगी। परिणाम यह होगा कि न मुझे सुख मिलेगा, न उदय को।'

'उदय को मैं अपने पास रखूँगी। तुमको भय लगता हो, तो मैं उसे लेकर कोमलमेर के बाहर चली जाऊँगी।' माता की आँखों में सती का तेज प्रकट हुआ।

अविनाश विचार में पड़ गया! माता के सामने इतना-सा वाद-विवाद भी उसने कभी नहीं किया था। वह संसार के जंजाल से छूटना चाहता था। इतने में यह धाय नया जंजाल और नयी उलझनें लेकर उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। परन्तु जंजाल के भय से आश्रय माँगने आये हुए, महाराणा के पुत्र को आश्रय न देना, यह भी उसे उचित न लगा। यह तो कायरता होगी और इससे उसके धर्म, शान्ति और विराग को लांछन लगेगा। ऊपर से वह अपनी अनिच्छा प्रदर्शित करते हुए पन्ना से बातें कर रहा था। परन्तु उसका मन तो दूसरी ही भावना में बहा जाता था। ऐसे अवसर पर माता की आज्ञा हुई। सत्य

को ढँकनेवाली व्यवहारकुशलता दूर हुई, और अविनाश ने कहा—उदय कहाँ है ? उसे ले आओ, पन्ना !

'इस तरह मैं कैसे लाऊँ ? पहले आप वचन दें कि उसको गुप्त रूप से रखेंगे। गुप्त रखकर योग्य शिक्षा देंगे, और समय आने पर उसे महाराणा की गद्दी पर बिठाएँगे। तभी मैं उदय को आपके पास लाऊँगी।'

'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम जैसा कहोगी, वैसा ही करूँगा। बन्धक में मेरी माता !'

'बन्धक की मुझे आवश्यकता नहीं। आपने कहा, यह मेरे लिए पर्याप्त है।' पन्ना ने सन्तुष्ट होकर कहा। आज उसको शान्ति मिली, इतने कष्ट और सन्ताप के बाद ! उसके सिर का बोझ कुछ हलका हुआ। आखिर मेवाड़ में एक ऐसा पुरुष मिल ही गया, जिसने राणा साँगा के पुत्र को आश्रय देने का साहस किया।

'अब तो उदयसिंह को लाओगी न ?' अविनाश ने पूछा।

'वह तो बाहर ही खड़ा है, रूपा नायक के साथ !' पन्ना ने कहा।

अविनाश ने अनुचर भेजकर दोनों को बुलाया। दो की जगह तीन आदमी भीतर आये—एक रत्नसिंह, दूसरा रूपा नायक और तीसरा उदयसिंह।

छः वर्ष के कोमल उदयसिंह को अविनाश और उसकी माता क्षण-भर एकटक देखते रहे।

'धाय मा ! मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी थी ?' कहता हुआ उदय पन्ना की गोद में छिप गया।

पन्ना ने उदय के मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा—कहीं भी नहीं, मेरे लाल, आज से हम लोग यहीं रहेंगे।

'क्यों ? चित्तौड़ न जा सकेंगे ?'

'जा सकेंगे, कुछ समय बाद। तब तक तुम्हें यहीं रहना होगा।'

'और तुम कहाँ रहोगी ?'

'मैं भी तुम्हारे साथ ही रहूँगी।'

'और जगदेव ?'

जगदेव पन्ना का शिशु पुत्र था। उदय और जगदेव साथ-ही-साथ खेलते और साथ ही सोते थे। जागने के बाद उदय बार-बार जगदेव को याद किया करता। उसी जगदेव को उसकी माता ने उदय की जान बचाने के लिए मृत्यु के मुख में भेज दिया था!

पन्ना की आँखों से अश्रु की अनन्त धाराएँ बह चलीं। अभी तक मन को दृढ़ करके पन्ना अपना कार्य कर रही थी। जगदेव के उल्लेख ने उसके मन के बाँध तोड़ दिये। वह विह्वल हो गयी। चित्तौड़ से भागते हुए मार्ग में जब-जब उदय जगदेव के विषय में प्रश्न करता तब-तब पन्ना और रूपा उसको उड़ता हुआ-सा जवाब देते और उसका ध्यान दूसरी बातों की ओर ले जाते। इस समय उदय ने जगदेव को याद किया। अब कहाँ से जगदेव को लायें ?

सब की आँखों में अश्रु छलक-छलक आये। अपनी कष्टमय, वैभवहीन, गुप्त प्रकार से की जानेवाली यात्रा में उदय को इतना तो समझ में आ गया था कि सब लोग उसे किसी विपदा से बचाने के लिए दौड़-धूप कर रहे हैं। इस विपदा के समय मृत्यु, देश-त्याग और लम्बी यात्राओं का सामना करना पड़ सकता है, यह भी वह समझने लगा था! बनवीर ने साँगा के पुत्रों को मारा, यह बात भी उसको मालूम हो गयी थी। परन्तु इस बात पर उसका विश्वास बैठता न था, कारण वह अपने को तो जीवित पाता था परन्तु जगदेव को साथ में न देखकर वह दुःखी हो जाता था। उसका समाचार पूछते ही जब उदय ने पन्ना के नेत्रों में आँसू देखे, तब तो उसकी व्याकुलता और भी बढ़ गयी। और वह और भी आग्रह करने लगा—जगदेव कहाँ है ? जगदेव को लाओ!

अविनाश की माता ने उदय को अपनी गोद में लेने का प्रयत्न किया। उदय को ऐसा आभास हुआ मानो सब लोग उसे पन्ना से छीन रहे हैं! वह पन्ना की गोद में और भी छिपकर बैठ गया!

व्याकुलता की घड़ी बीत गयी ! उदय के लिए सुन्दर कपड़े लाये गये, और धीरे-धीरे वह अविनाश के प्रासाद में खेलने लगा। खेलते समय भी उसकी दृष्टि सदा पन्ना की ओर लगी रहती थी। उसे भय लगा रहता कि कहीं पन्ना भी अचानक अदृश्य न हो जाये ! अविनाश की माताजी पन्ना और उदय को साथ लेकर, अन्तःपुर में चली गयीं।

'उदयसिंह को मैंने राजतिलक किया है; यह भूलना मत !' रत्नसिंह ने अविनाश से कहा।

'तुम्हारा मित्र हूँ, इसलिए भूल नहीं सकता; परन्तु सत्य भी इस बात को भूलने न देगा। उदय ही चित्तौड़ की गद्दी का सच्चा उत्तराधिकारी है। प्रश्न केवल इतना ही है कि कुछ समय तक उसे छिपाकर कैसे रखा जाये ?'

'जाननेवाले तो हम पाँच-सात आदमी ही हैं।'

'सिंहराव या यशकर्ण खबर दे दें, तो ?'

'उनके गाँवों को लूट लेने की मैंने धमकी दी है और बनवीर कभी उनकी बात को सच मानेगा नहीं। यदि सच मान ले, तो ये दोनो गहरे अपराध में फँस जायें।'

'मैं दो-तीन वर्ष के लिए यात्रा करने चला जाऊँ, तो ?'

'अविनाश ! कैसे होते जाते हो ? रूपा नायक तो उदय के पास ही है। आवश्यकता पड़ने पर काली रात में भी, कैसा भी घेरा क्यों न हो, उसे तोड़कर वह उदय को भील-बस्ती में ले जायेगा।' रत्नसिंह ने अविनाश को आश्वासन दिया।

अविनाश ने वचन अवश्य दिया था, जिसका प्राणों को देकर भी पालन करना उसका कर्त्तव्य था। परन्तु अभी तक उसके मन की अस्वस्थता कम न हुई थी। वह बोल उठा—यदि ऐसा ही है, तो उदय को सीधे भील-बस्ती में ही क्यों नहीं ले गये ?

'उसे तो मेवाड़ का राणा बनाना है। भील-बस्ती में राणा के योग्य संस्कार उसे कैसे मिलेंगे ? कहीं स्थान न मिलता, तब भील-बस्ती

में तो उसे ले ही जाना पड़ता। यदि तुमने पन्ना को ना कह दिया होता, तो मैं उसे अपने घर पर ही ले जाता !'

धीरे-धीरे अविनाश का हृदय स्थिर हुआ। मेवाड़ की भील-प्रजा का रत्नसिंह-जैसा अग्रणी उसके पक्ष में था। धन की उसे कमी न थी। जब वह चाहे तब विशाल सेना खड़ी कर सकता था। बनवीर की क्रूरता ने यह सिद्ध कर दिया था कि वह महाराणा-पद के सर्वथा अयोग्य है। सामन्तों ने बनवीर को गद्दी पर बिठाया था, चित्तौड़ की प्रतिष्ठा बचाने के लिए ! यह सम्मान उसे व्यक्तिगत रूप में दिया गया था, इसलिए नहीं कि वह मेवाड़ के सिंहासन का अधिकार अपने वंशजों के लिए सुरक्षित करे। बनवीर तो यही समझ रहा था कि विक्रमादित्य और उदय दोनों को मारकर वह चित्तौड़ की गद्दी अपने वंशजों के लिए सुरक्षित कर रहा है।

उदयसिंह कोमलमेर में अविनाश के भतीजे के रूप में रहने लगा। मेवाड़ में इने-गिने लोग ही जानते थे कि साँगा का पुत्र उदय जीवित है। रूपा नायक और पन्ना भी उदय के साथ ही कोमलमेर में रहने लगे। रत्नसिंह बीच-बीच में कोमलमेर आता और उदय के कुशल समाचार ले जाता।

मेवाड़ के इतिहास का यह एक पृष्ठ कुछ वर्षों तक गुप्त रहा।

सात वर्ष तक आशा शाह ने उदय, पन्ना और रूपा को गुप्त रूप से अपने महल में रखा। पथरीली क्यारी में एक पुष्प खिल रहा था।

एक क्यों ? अनेक !

खिलती कलियाँ

उदय खेलने के लिए प्रायः आशा शाह के बगीचे में जाया करता था। सवेरे, दोपहर या सायंकाल, जब-जब उसे खेलने की इच्छा होती, रूपा नायक उसे बगीचे में ले जाता। वहाँ पहुँचकर उदय गलीचे सदृश हरे-हरे घास के मैदान में दौड़ने लगता। एक दिन ज्योंही उदय ने मैदान में पैर रखा छोटे-छोटे जन्तु किसी अदृश्य स्थान से निकल पड़े और भागते हुए दूसरे स्थान में छिप गये।

'रूपा! हम लोगों को घास पर न चलना चाहिए।' उदय ने कहा।

'चलने के लिए तो घास लगायी गयी है। क्या आपको अच्छा नहीं लगता?' रूपा ने पूछा।

'अच्छा तो बहुत लगता है।....देखो न, कितनी शीतल और मुलायम है? परन्तु उसमें रहनेवाले जन्तुओं को कष्ट होता है। हमारे चलने से उन्हें भाग जाना पड़ता है।'

'उन्हें भले ही भागना पड़े; इससे आपको क्या? आप तो जहाँ इच्छा हो वहाँ खुशी से जायें!'

'ऊँहूँ, मैं तो कंकरों पर चलूँगा। घास पर पैर न रखूँगा।'

घास पर चलना उदय को बड़ा ही प्रिय था; तथापि उसने पथरीली पगडंडियों पर ही चलना शुरू किया। उदय की यह ज़िद रूपा की समझ में न आयी। उसने इस विषय में पन्ना से पूछा।

'चित्तौड़ में भी उदय घास पर बहुत कम चलता था।' पन्ना ने कहा।

'क्यों?'

'क्या मालूम? छोटे बच्चों के मन में कभी-कभी ऐसी ही ज़िद बैठ जाती है।'

★

बगीचे में तितलियाँ उड़ा करती थीं। कभी वे एक पुष्प पर बैठतीं, कभी उड़कर दूसरे पुष्प पर! उदय नाना प्रकार के उनके रंग और उनकी चमक को देखकर बहुत प्रसन्न होता था। उसकी सदैव यह इच्छा रहती थी कि वह दौड़कर इन तितलियों को पकड़ ले, और उनके रंगों को देर तक देखता रहे। उड़ती हुई तितलियों को देखकर उदय का मन हाथ में न रहता। और वह दौड़कर उनके पास पहुँच जाता।

'पकड़ लें! देख क्या रहे हैं?' रूपा ने सलाह दी।

'मन तो बहुत होता है कि इनको पकड़कर एकत्र करूँ।'

'एकत्र करें न! किसने रोका है?'

'इनको यों ही उड़ते हुए देखूँ, तो?'

'कैसे देख सकेंगे? वे आपके पास आकर बैठेंगी तो नहीं!'

'कल तो एक तितली देर तक मेरे कुरते पर बैठी रही।'

'भूल से कभी बैठी भी रह जाती है। आपने उसे पकड़ा नहीं?'

'मैंने पकड़ लिया, परन्तु पकड़े जाने के बाद वह इतनी काँपने लगी कि आखिर मुझे उसे छोड़ देना पड़ा।'

'यह देखिए, आपके हाथ के पास से उड़ी जाती है, दौड़िए, पकड़ लीजिए। देखिए, उस पत्ती पर बैठी है।'

रूपा नायक की सूचना के अनुसार उदय दौड़ा, और एक पुष्प पर

बैठी हुई बड़ी-सी तितली को उसने पकड़ लिया।

'शाबाश!' रूपा ने कहा।

मुट्ठी में गिरफ्तार तितली को लेकर उदय रूपा के पास आया और उसने रूपा के सामने मुट्ठी खोली।

अब तितली में उड़ने की शक्ति न रही थी। मुट्ठी के अन्दर वह कुचल गयी थी। मुट्ठी खुलने पर वह दो-एक बार हिली, और इसके बाद पृथ्वी पर गिर पड़ी। तितली का हिलना भी बन्द हो गया और उसका सौन्दर्य भी नष्ट हो गया।

'यह क्या हुआ?' उदय ने पूछा।

'लगता है वह मर गयी।'

'उसे मैंने मार डाला!'

'इसमें क्या हुआ? बहुतेरी तितलियाँ इस प्रकार मर जाती हैं। मैं दो-चार पकड़कर ला दूँ?'

'नहीं!' कहकर उदय बगीचे से अपने आवास की ओर लौटा। उसका हृदय शोक से भर गया था। उस उड़नेवाली, पर मरी हुई तितली के रूप-रंग उसकी दृष्टि के सामने आया करते थे। भोजन करने के समय पन्ना ने देखा कि प्रतिदिन की भाँति उदय आज खाना नहीं खा रहा है।

'उदय! क्या हो रहा है?' पन्ना ने पूछा।

'कुछ नहीं।'

'खाना क्यों नहीं खाते?'

'मुझे आज भूख नहीं है।'

'बगीचे में जाने के पहले तो कहते थे कि भूख लगी है।'

'अब भूख चली गयी।'

'कारण?'

'आज खाने में स्वाद नहीं आता।'

'खाना तो स्वादिष्ट बना है। मैं चखकर लायी हूँ।' पन्ना उदय के

लिए बने हुए भोजन को पहले स्वयं चख लेती, और उसके बाद उसे खिलाती थी।

उदय ने कोई उत्तर नहीं दिया। परन्तु पन्ना ने उसकी आँखों में आँसू देखे। उसने तुरन्त रूपा को बुलाकर पूछा—आज उदय खाता क्यों नहीं ?

'कारण का मुझे पता नहीं।'

'बगीचे में कुछ हुआ था ?'

'कुछ भी नहीं। अरे हाँ, एक तितली को पकड़कर यह ला रहे थे, वह हाथ ही में दबकर मर गयी! शायद उसी बात का दुःख हो।' इतना कहकर रूपा हँस पड़ा।

पन्ना विचार में पड़ गयी। कुछ देर तक उसने उदय के मुख की ओर ध्यान से देखा। उसे ऐसा आभास हुआ कि रूपा का हँसना उदय को रुचा नहीं।

बालकों में भी दया की वृत्ति कभी जागृत हो जाती है, जिसके कारण कुरूप हिंसा के प्रति उनको घृणा होने लगती है। यों तो साधारणतः बालक हिंसक बनकर ही अपने आस-पास की जीवित सृष्टि को पहिचानने का प्रयत्न करता है। पन्ना ने समझा कि खेलने के लिए पकड़े हुए प्राणी को खेलने योग्य न पाकर उदय दुःखी हो गया।

'रूपा, कल सवेरे तितली को इस प्रकार पकड़कर लाना कि वह मरे नहीं। उदय उसके साथ खेलेगा।' पन्ना ने कहा।

बहुत समझाने पर भी उस दिन उदय खेलने के लिए बाहर नहीं निकला।

*

बगीचे की मालिन मैना अपनी पुत्री नन्दिनी को साथ में लिये फूल तोड़ रही थी। फूल तोड़कर उनका गुच्छा बनाया, और वह गुच्छा मैना ने उदय को दिया। गुच्छे की ओर देखकर उदय ने मालिन से कहा—मैना! रोज़ तुम फूल तोड़कर कहाँ ले जाती हो ?

'देव-पूजा के लिए।'

'फूलों को न तोड़कर देव को ही यहाँ लाकर बिठाओ, तो?'

'परन्तु मुझे अपनी-वेणी में गूँथने के लिए गजरा तो चाहिए न!' मालिन की बेटी नन्दिनी ने कहा।

'इससे तो अच्छा हो कि तुम्हीं बगीचे में आकर फूलों के नीचे बैठ जाओ। वहाँ जो फूल पसन्द हों, उनके गजरे-ही-गजरे दीख पड़ेंगे।' उदय ने नन्दिनी से कहा।

'उँहूँ! मुझे तो फूल मेरे अपने पास चाहिए—जहाँ जाऊँ, लेती जाऊँ।' नन्दिनी ने होठ फुलाकर उदय की सूचना अस्वीकार की।

'और देखो भाई! फूल चुन न लें, तो आखिर वे सूख ही जायेंगे। उन्हें पेड़ पर ही छोड़ देने का कोई अर्थ नहीं।' मैना ने समझाया।

'बगीचा कब सुन्दर लगता है? फूलों के रहने पर? या उन्हें तोड़ लेने पर?' उदय ने पूछा।

'यदि किसी उपयोग में न आयें तो फूल किस काम के?' छोटी उम्र होने पर भी अपने व्यक्तित्व को समझनेवाली नन्दिनी ने कन्धे हिलाकर उदय के प्रश्न के सामने अपना प्रश्न रखा।

'अच्छा चलिए, फूल तोड़ने से आपको दुःख होता है, तो हम लोग फूल चुनना बन्द कर दें।' मैना ने उदय के मन को सान्त्वना दी। अविनाश के भतीजे को प्रसन्न रखना उसने उचित समझा।

'रूपा! हम लोग चित्तौड़ जाकर जब अपने महल में रहेंगे, तब वहाँ एक ऐसा बगीचा लगायेंगे, जिसके फूलों को कोई तोड़ न सके। फिर तो वहाँ फूल-ही-फूल....फूलों से बगीचा भर जायेगा।'

'अच्छा!' हँसकर रूपा ने उत्तर दिया।

'उस बगीचे में किसी को आने ही न देंगे।'

'जैसा आपका हुक्म, परन्तु आप तो अन्दर जायेंगे या नहीं?'

'मेरे और तुम्हारे लिए कोई रुकावट न रहेगी। परन्तु याद रहे, हम लोग भी फूल न तोड़ सकेंगे!'

'अच्छा ! परन्तु पृथ्वी पर गिरे हुए फूलों को लेने की इजाज़त तो रहेगी या नहीं ?'

उदय विचार में पड़ गया।

गिरते हुए फूलों के दृश्य को दिखाते हुए रूपा ने कहा—ये पारिजात के फूल तो ढेर-के-ढेर गिर रहे हैं—कोई इनको तोड़ता नहीं तब भी

'उस नन्दिनी को फूलों के गजरे बड़े प्रिय हैं। उसे लाकर इस पारिजात वृक्ष के नीचे बैठा दें, तो ?'

'उस पर फूलों की वर्षा हो; परन्तु फूल आप लेने न दें, तो गजरे बनें कैसे ?'

'रूपा ! फूलों के गजरे अच्छे, या फूल की वर्षा ?'

रूपा को इस प्रकार की पुष्पों की प्रश्नावली में कोई रस न था। परन्तु इन प्रश्नों से उदय को प्रतिभा के दर्शन होते थे, इस कारण वह इन प्रश्न को सुन-सुनकर प्रसन्न होता था, और बगीचे से लौटकर, ये सब बातें पन्ना को सविस्तर सुनाता था।

उदय की ये बातें सुनकर पन्ना को कभी-कभी विक्षोभ होता। परन्तु इन प्रश्नों के पीछे छिपी हुई भावना को बाल-स्वभाव की विचित्रता समझकर वह सन्तोष मानती।

पन्ना ने एक दिन रूपा से कहा—रूपा नायक ! मन होता है कि हम लोग उदय को अकेला छोड़ कुछ दिन के लिए अन्यत्र चले जायें !

'कारण ?'

'यही कि हम लोगों के रहने से उदय का लालन-पालन आवश्यकता से अधिक होता है, और वह अधिक कोमल और लाडला होता जाता है।'

'मेरे विचार में तो यह आता है कि उदय को गुलेल और तीर-धनुष चलाना सिखाऊँ और घुड़सवारी भी।'

'ज़रा और बड़ा होने दो।'

'इन कामों में छोटे-बड़े का सवाल ही नहीं उठता। खेल-ही-खेल में वह सब-कुछ सीख जायेगा।' रूपा ने कहा। पन्ना को भी रूपा का प्रस्ताव पसन्द आया।

दूसरे दिन रूपा ने एक सुन्दर गुलेल बनाकर उदय को दिखाई।

'देखिए, इस गुलेल में पत्थर रखकर फेंकिए। कितनी दूर जाता है?' कहकर रूपा ने गुलेल चलायी और पत्थर को बहुत दूर फेंक दिया।

'रूपा! यह तो बहुत दूर गया। लाओ, मुझे दो, मैं चलाकर देखूँ।' कहकर उदय ने गुलेल अपने हाथ में ली और उसमें पत्थर रखकर उसे चलाने का प्रयत्न किया। पहली बार पत्थर वहीं नीचे गिर पड़ा। रूपा हँसा। दूसरी बार उदय ने उसी पत्थर का रखकर गुलेल चलाने की कोशिश की। पत्थर को उसने खींचा अवश्य, परन्तु वह दूर न जाकर उसी के अँगूठे से लगा। उदय के मुख से चीख निकली और गुलेल पृथ्वी पर गिर पड़ी। इस बार रूपा हँसा नहीं। वह समझ गया कि उदय के अँगूठे में सख्त चोट लगी है। इसलिए वह तुरन्त बोल उठा—आज इतना ही बस, कल ठीक-ठीक आ जायेगा।

'ऊँहूँ! आज ही आ जायेगा।....देखो।' कहकर उदय ने गुलेल उठा ली और उसमें दूसरा पत्थर रखा।

'अब आज न चलायें। हाथ में लगा है न? पन्ना और अविनाश काका गुस्सा करेंगे।' रूपा ने कहा।

'मैं कह दूँगा कि मैंने रूपा का कहना नहीं माना। मुझे चोट लगी, उसमें रूपा का कोई दोष न था।' कहकर उदय ने गुलेल चला ही दी। इस बार निपुणता से फेंका हुआ पत्थर बहुत दूर जाकर गिरा।

'शाबाश! आपका पत्थर मेरे पत्थर जितना ही दूर गया।' कहकर रूपा ने उदय की प्रशंसा की।

'नहीं, तुम्हारे पत्थर से तो पीछे गिरा है, मैं देख रहा हूँ। अब तो तुम्हारे-जितना ही दूर फेंककर रहूँगा!'

कहकर उदय ने पाँच-सात बार गुलेल चलायी। एकाध प्रयत्न में

उसे चोट भी लगी। उसकी परवाह न करे उदय गुलेल चलाता ही गया। अन्त में जब उसने रूपा-द्वारा फेंके हुए पत्थर की दूरी तक अपना पत्थर पहुँचाया तभी गुलेल नीचे रखी। रूपा के आनन्द का पार न रहा। उसे विश्वास हो गया कि जिस बालक को उसने मृत्यु के मुख से बचाया, वह वीर और धीर होगा। उसने पन्ना के सामने भी अपना आनन्द व्यक्त किया।

'आज तक मुझे भ्रम था कि कहीं उदय आवश्यकता से अधिक कोमल न बन जाये! परन्तु आज जान पड़ा कि उसमें चित्तौड़ का हठ है।' रूपा ने पन्ना को आश्वासन दिया।

★

परन्तु दूसरे ही दिन उदय के हठ ने दूसरा स्वरूप पकड़ा।

'पत्थर दूर फेंकना तो आप सीख गये। अब निशाना लगाना भी सीखिए।' रूपा ने कहा।

'अच्छा! बताओ कहाँ निशाना लगाऊँ?'

'देखिए, उस सरोवर के किनारे पर एक चिड़िया बैठी है।....यह निशाना छोटा तो न पड़ेगा?' रूपा ने निशाना बताया।

'चिड़िया? जाओ, जाओ, उसे क्या निशाना बनायें?'

'तब उधर देखिए, वह जो मोर पहाड़ी के नीचे नाच रहा है न.... उस पर....'

'तुम भी कैसे निशाने बताते हो, रूपा? ऐसे सुन्दर, रंग-बिरंगे पंखों-वाले मोर को मैं गुलेल से मारूँ?'

'तब उस कौए को मारिए—कब से उस पेड़ पर बैठा हुआ काँव-काँव कर रहा है।'

उदय ने वृक्ष के ऊपर बैठे हुए कौए को निशाना बनाकर पत्थर चलाया। वृक्ष की पत्तियों में खड़खड़ाहट हुई, और कौआ उड़कर दूसरे वृक्ष पर बैठ गया।

'ज़रा-सा रह गया, कुमार! दो अंगुल का फेर पड़ गया। कोई हर्ज़

नहीं, कौआ तो पास ही के पेड़ पर बैठा है। ज़रा आगे आयें।' रूपा ने कहा।

'नहीं। पहले मुझे उसी निशाने पर कंकर मारने दो, जहाँ से कौआ उड़ा था। निशाना लगेगा क्यों नहीं?' कहकर कौआ जहाँ पहले बैठा था, उसी निशाने पर गुलेल चलायी।

'ठीक! यदि पहली बार इसी प्रकार निशाना लगाया होता, तो पत्थर लक्ष्य पर लगता और कौआ तड़पकर नीचे गिर जाता।'

'मेरा निशाना तो पहली बार भी ठीक ही था।' हँसकर उदय ने कहा।

'तब कौआ मरा क्यों नहीं?'

'मैं उसे मारना नहीं चाहता था, इसी लिए मैंने जानकर पत्थर दो अंगुल दूर फेंका।' प्रसन्न होते हुए उदय ने कहा।

'आप क्या कहते हैं? जान-बूझकर निशाना चूकने का कारण?'

'कारण कुछ नहीं। ऐसे पक्षियों को क्या मारना?'

'परन्तु जब आप ऐसे छोटे-छोटे पक्षियों से शुरू न करेंगे, तब सिंह-बाघ का शिकार कैसे कर सकेंगे?'

'सिंह-बाघ सामने आयेंगे तब देख लेंगे।'

'दो-चार दिन में मैं आपको तीर-कमान चलाना सिखाऊँगा। जानवरों पर निशाना लगायेंगे, तभी तीर चलाना आयेगा।'

'ले आओ तीर-कमान। तब मैं बताऊँ कि उन्हें कैसे चलाना चाहिए।'

रूपा को उदय के इस दुराग्रह का रहस्य समझ में न आया। कीट-पतंग मर जायें इस डर से घास पर न चलना! तितली पकड़ी और वह कुचल गयी, इस कारण दिन-भर उपवास किया! चिड़िया, मोर या कौए पर गुलेल न चलाई! यह कैसी मनोदशा? अविनाश के जैन धर्म का असर तो उदय के मन पर नहीं पड़ रहा है?

तथापि निशाना वह बराबर जानता था। लक्ष्यवेध की पूर्ण निपु-

शाता उसमें थी। इन दोनो परिस्थितियों का मेल कैसे हो? उदय को भील-आवास में रखा जाये तो कैसा रहे?

२

एक दिन रूपा ने पुनः आग्रह किया—उस तालाब में देखा, कितनी जल-मुर्गाबियाँ तैर रही हैं?'

'कितनी सुन्दर लगती हैं! कैसी सरसर तैरती हैं, और फिर पानी में घुस जाती हैं! वह....देखो, देखो, रूपा! कितनी सफ़ाई से पानी में चली गयीं!'

'एकाध को निशाना बनाकर, गुलेल चलाइए!'

'वह बेचारी मर जाये, तो?'

'तो क्या हुआ? भले मर जाये! इतनी सब तो हैं? मुर्गी को मारने से डरते हैं, तो आदमी को कैसे मारेंगे?'

'आदमी को क्यों मारूँ?'

'उसे तो मारना ही पड़ेगा। राज्य लेने के लिए तो कितने ही युद्ध करने पड़ेंगे।'

'आदमियों को मारे बिना राज्य मिल जाये, तब तो उसे लेना चाहिए; आदमियों को मारकर नहीं!'

'आपको यह सब कौन सिखलाता है? वह जैन गुरुजी? या वे शास्त्रीजी?'

'मुझे? उन दोनो में से कोई भी यह नहीं सिखलाता। वे तो उलटे मेरे सामने युद्धों की ही कथा-वार्ताएँ कहते रहते हैं!'

'तब आपको तीर-कमान चलाना सिखाकर हम क्या करेंगे?'

'सिखाकर देखो तो सही! देखो, मेरी गुलेल कैसी साफ़ जाती है!' कहकर उदय ने जल-मुर्गी को न मार पानी भरकर तालाब के किनारे की पदावली चढ़नेवाली एक तरुण बालिका की ओर गुलेल चलायी। पत्थर जाकर उस बाला के सिर पर रखे हुए घड़े से लगा और घड़ा

फूट गया ! घड़े के पानी से उस बाला के वस्त्र भींग गये।

'वाह, वाह ! निशाना खूब बैठा ! परन्तु यह तो उस मालिन की लड़की है। बड़ी ही नटखट !' रूपा ने कहा।

'इसी लिए तो मैंने उसका घड़ा तोड़ दिया।' हँसकर उदय ने कहा। भींगी हुई नन्दिनी और उसके क्रुद्ध मुख को देखता हुआ उदय चुपचाप खड़ा रहा। नन्दिनी ने तुरन्त समझ लिया कि उसका घड़ा किसने फोड़ा। भींगे वस्त्र पहिने तालाब के किनारे से जल्दी-जल्दी चल-कर, वह उदय के सामने आ पहुँची और क्रोध में भरी कहने लगी—गाँव के ठाकुर का भतीजा है, इसलिए इतना मिज़ाज है ?

'तुम किसे कह रही हो ?' उदय ने पूछा।

'तुमको....तुमको ! उदयसिंह को ! मेरा घड़ा क्यों फोड़ डाला ?'

'तुम मेरे फूल क्यों चुन ले जाती हो ?'

'मैं चुन ले जाऊँगी। एक बार नहीं, सौ बार !'

'तो मैं रोज़ तुम्हारा घड़ा फोड़ दूँगा।'

'तो क्या अकेले तुम्हीं को गुलेल चलाना आता है ?'

'तुमको भी गुलेल चलाना आता है ?' ज़रा आश्चर्य में उदय ने पूछा।

'तुमने गुलेल मारकर मेरा घड़ा फोड़ डाला, मैं जब गुलेल चला-ऊँगी, तब तुम्हारा सिर फोड़ डालूँगी।' नन्दिनी ने आवेश में आकर कहा।

'चल, चल, छोकरी ! बोलते-बोलते सिर चढ़ गयी है ! जानती है, किसके सामने बोल रही है ?' रूपा ने नन्दिनी को धमकाया। उदय के प्रति प्रदर्शित उद्दण्डता उसे पसन्द न आयी।

'तो, नायक ! मुझे क्यों धमकाते हो ? कहो जो कुछ कहना है अपने उदय से ! पराये घड़े क्यों फोड़ता है ?' प्रचण्डकाय रूपा नायक का भी भय नन्दिनी को लगा नहीं। वह उसके साथ भी झगड़ा करने को तैयार हो गयी।

उसके पीछे पानी भरकर आनेवाली उसकी मा ने पुकारकर कहा —चुप रह री अब ! बड़े आदमियों के लड़कों से वाद-विवाद करना ठीक नहीं।

'इसका यह अर्थ कि बड़े आदमी के लड़के, जिसे चाहें उसे गुलेल मारें ?' नन्दिनी ने उत्तर दिया।

'अच्छा चल, अब बहुत हुआ ! रूपा नायक ! इसके बोल का खयाल न करना; बच्ची है। बुद्धि इसमें है नहीं, बक-बक करने की आदत पड़ गयी है !' कहकर मैना नन्दिनी का हाथ पकड़कर आगे खींच ले गयी !

बालक उदय कुछ देर तक इस तेजस्विनी बाला को देखता रहा। बाला ने भी पुनः उदय की ओर अपने कन्धे हिलाये। उसका यह अभिनय उदय को प्रिय लगा। उदय ने भी नन्दिनी का अनुकरण कर अपने कन्धे हिलाये, परन्तु अपना अभिनय उसे पसन्द न आया।

'वह तो नन्दिनी को ही अच्छा लगता है।' मन-ही-मन उदय बोला और दोनों अपने-अपने आवास की ओर लौटे।

'ये नीच लोग कितने सिर पर चढ़ गये हैं ?' रूपा बड़बड़ाया।

'नीच क्यों, रूपा ?'

'तब क्या माली उच्च वर्ण के कहे जायेंगे ?'

'मैं किस वर्ण का हूँ ?

'क्षत्रिय, सिसोदिया कुल ! सूर्यवंश और बाप्पा रावल के सपूत ! फिर वर्ण के विषय में पूछना ही क्या ?'

'मेरी समझ में कुछ आया नहीं, रूपा ? तुम्हारा भी वर्ण ऊँचा ही है न ?'

'मूल तो हम लोग भी उच्च वर्ण के ! हमारे मूल-पुरुष महादेवजी ! परन्तु जब से हम लोग पहाड़ों में रहने लगे, तब से हमारी भी गिनती नीच वर्ण में होने लगी।'

'रूपा ! पन्ना किस वर्ण की ?'

'आपको यही सब बातें करना है, या घर लौटना है ?'

'रूपा ! जिस वर्ण के तुम हो, पन्ना है और जिस वर्ण में नन्दिनी-जैसी लड़की है उस वर्ण को नीच कैसे कहा जा सकता है ?'

क्षण-भर के लिए रूपा भी विचार में पड़ गया ! बालक असत्य तो नहीं कहता ! परन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया ।

अपने आवास में पहुँचकर आज की कुल बातें रूपा ने पन्ना से कहीं—उदय गुलेल चलाना सीख गया, और निशाना भी अचूक लेने लगा है । बड़ी सफ़ाई से उसने नन्दिनी के सिर पर रखे हुए घड़े को तोड़ दिया !

पन्ना हँस पड़ी और उसने हँसते-हँसते पूछा—उस लड़की का घड़ा क्यों फोड़ा ? और कोई निशाना नहीं मिला ?

'पानी भरने तो बहुत-सी स्त्रियाँ आयी थीं; नन्दिनी को कदाचित् पहिचान लिया हो !'

'कैसी है वह लड़की ?'

'तुमने नहीं देखा ? रोज़ उस मालिन के साथ आती है, बड़ी वाचाल ! उदय को धमकी देती थी कि गुलेल मारकर सिर फोड़ दूँगी ।'

'अच्छा ? तब तो उसे देखना पड़ेगा ।'

'क्यों ?'

'तुम पुरुष इन सब बातों को नहीं समझ सकते ।' ऐसा मूक भाव मुख से प्रकट करके बिना उत्तर दिये ही पन्ना अपने काम में लग गयी ।

★

एक दिन बहुत सवेरे ही उठकर उदय बगीचे में गया । वहाँ पहुँचकर उसने पारिजात के ढेर-के-ढेर, गिरे हुए पुष्पों को इकट्ठा किया और सुई-डोरा लेकर माला बनाना शुरू किया । बहुत सरल और साधारण प्रतीत होनेवाले काम भी पहले प्रयत्न में सफल नहीं होते । अपनी इच्छानुसार सुई के छेद में डोरा जल्दी घुसता नहीं । किसी तरह प्रवेश कर भी जाये तो फूलों को पिरोना कठिन हो जाता—कभी फूल की नाल कट जाती है, तो कभी पँखुड़ियाँ झरने लगती हैं । जब दस-पाँच फूल

कुचल जायें, ख़राब हो जायें, या फेंक देने पड़ें, तब कहीं एक फूल ठीक तरीक़े से सुई-डोरे में जाता है, और वह भी कितनी देर के बाद ? कितनी मेहनत करने पर ?

'गुलेल-चलाना अच्छा, परन्तु यह माला पिरोनी अच्छी नहीं ।' मन-ही-मन उदय बोला । इतने में ही पास खड़ी हुई नन्दिनी खिल-खिलाकर हँस पड़ी ।

'तुम कब से यहाँ खड़ी हो ?' उदय ने पूछा ।

'जितनी देर में कठिनाई से तुमने दो फूल पिरोये । कितनी देर लग रही है ?' नन्दिनी ने कहा ।

'परन्तु तुम हँस क्यों रही हो ?'

'हँसूँ नहीं तो क्या करूँ ? अभी तक चार फूल तो पिरो नहीं पाये ।'

'आज तालाब पर जाओगी न ?'

'ज़रूर ! क्यों न जाऊँ ? परन्तु आज मैं पीतल का घड़ा लेकर जाऊँगी; और देखो, उदय ! तुम्हारी गुलेल से कहीं अधिक मजबूत गुलेल मेरे पास है ।' कहकर नन्दिनी ने अपनी गुलेल उदय को दिखायी ।

'परन्तु नन्दिनी ! आज मैं तुम्हारे घड़े पर गुलेल न चलाऊँगा ।'

'मेरे घड़े पर चलाओ या न चलाओ, मैं तो आज तुमको छोड़ूँगी नहीं ।'

'परन्तु आज मैं उधर जानेवाला ही नहीं हूँ ।'

'क्यों ? मेरा भय है ?'

'मैं तो पहले यह माला पिरोऊँगा ।'

'इस तरह तो माला पिरोते एक महीना बीत जायेगा; लाओ, मुझे दो ! मैं माला पिरो दूँ ।'

'ऊँहूँ ! मैं ही पिरोऊँगा ।'

'पिरो चुके तुम ! और पहिननेवाला पहिन भी चुका !' कहकर नन्दिनी वहाँ से लौट गयी । उसकी मा उसे बुला रही थी ।

'कहाँ भटक रही थी ?' मैना ने पूछा ।

'बगीचे में ही, और कहाँ ? फूल इकट्ठे कर रही थी।' नन्दिनी ने उत्तर दिया।

मैना के साथ पन्ना भी आज बगीचे में आयी थी। पन्ना ने ध्यान से नन्दिनी को देखा। कुछ देर बाद उसने पूछा—अरे नन्दिनी ! क्या झगड़ा है तुम्हारे और उदय के बीच ?

'झगड़ा तो रोज़ ही होता है। किस झगड़े के विषय में पूछती हो ?'

'उदय ने तुम्हारा घड़ा फाड़ दिया था न ?'

'हाँ जी, क्या करूँ ? उलहना देने गयी, तब रूपा नायक और मेरी मा—दोनों मुझ पर नाराज़ हुए।'

'मैंने उदय से कह दिया है कि आज से ऐसी शरारत न करे।' पन्ना ने कहा।

'मैं भी झूठ न बोलूँगी ! मैंने भी उदय से कह दिया है कि यदि आज घड़े पर निशाना लगायाँ, तो....'

'चुप रह। बड़ों के साथ ऐसे बात की जाती है ?' मैना ने अपनी पुत्री को धमकाया।

'लड़की तेज़ लगती है।' पन्ना ने कहा।

'कुछ कहो मत माताजी ! सारे मुहल्ले से टक्कर लेती है। जा, फूल चुन ला।' मैना ने कहा।

नन्दिनी पुनः दौड़ चली और बगीचे में फूल चुनती हुई अदृश्य हो गयी।

मैना और पन्ना बगीचे में साथ-साथ घूमने लगीं। घूमते-घूमते उन्होंने देखा कि एक वृक्ष के नीचे फूल उछल रहे हैं।

'वहाँ क्या हो रहा है ?' पन्ना ने पूछा, और उस ओर अपने पैर बढ़ाये। कुछ दूर जाकर उन्होंने देखा कि उदय और नन्दिनी अंजली भर-भरकर एक दूसरे के ऊपर पुष्प फेंक रहे हैं, मानो फूलों से एक-दूसरे को मार रहे हों ! इतने में नन्दिनी पुष्प फेंकना बन्द करके, मृग-शावक की भाँति छलांग मारती हुई वहाँ से भाग गयी।

'देखा ? इस लड़की को अब मैं घर में ही बन्द रखूँगी।' कहकर मैना भी वहाँ से चली गयी।

विचार में मग्न पन्ना उदय को देखने लगी। उदय के मुख पर क्रोध की छाया थी। पन्ना ने देखा कि उदय भी नन्दिनी का पीछा करने के लिए तैयार हो रहा है। वह तुरन्त बोल उठी,—क्या हुआ, उदय ?

'कुछ नहीं।'

'तुम और नन्दिनी एक-दूसरे को फूलों से मार रहे थे न ?'

'हाँ।'

'क्यों ?'

'नन्दिनी ने मुझे चिढ़ाया।'

'क्यों ?'

'मुझे माला पिरोते नहीं आयी, इसलिए। उसने मुझे चिढ़ाया, तब मैंने उस पर फूल फेंके।'

'तब क्या हुआ ?'

'नन्दिनी ने मेरे ऊपर फूल फेंके। इस तरह हम लोगों ने एक-दूसरे को फूलों से खूब मारा।'

'यह तुमने अच्छा काम किया ?'

'मैं क्या करूँ ? उसने मुझे चिढ़ाया क्यों ?'

'परन्तु यह तो बताओ कि तुम माला क्यों पिरो रहे थे ?'

'मेरा मन हुआ।'

'इतनी मालाएँ घर में आती हैं, तब तुम्हें माला पिरोने की क्या आवश्यकता ?'

'मैंने कहा न कि माला पिरोने का मेरा मन हुआ।'

'परन्तु यह तो हमें मालूम हो कि माला तुम किसके लिए पिरोते थे ?'

पन्ना को स्थिर आँखों से देखता हुआ उदय उत्तर दिये बिना ही वहाँ से चला गया। उदय का यह व्यवहार देख पन्ना को विश्वास हो

गया कि रूपा के कथनानुसार यह कुमार सर्वथा मृदु, नम्र और सीधा-सादा न था। हठ की अथवा आग्रह की विभिन्न-भूमिकाएँ उसके प्रकृति-पटल पर तैयार हो रही थीं। किन्तु उसके हृदय में सिसोदियों की सख्ती विराजमान है, यह देखकर पन्ना को हर्ष हुआ। पन्ना के प्रश्न का उत्तर न देकर उदय ने जो उद्दण्डता प्रदर्शित की उससे पन्ना को बुरा न लगा। यद्यपि किशोरावस्था के उदय और नन्दिनी दोनों इस प्रकार मिलकर झगड़ा करें, यह उसे पसन्द न आया।

'रूपा! अब उदय को जल्दी से तीर-कमान की लत पर चढ़ाओ, घुड़सवारी में लगाओ, और उसके मन में शिकार का रस पैदा करो।' पन्ना ने रूपा को सलाह दी।

'इतनी जल्दी क्या है? सीखेंगे धीरे-धीरे!'

'नहीं रूपा! मुझे भय लगता है कि ऐसे पौरुष-भरे कार्यों में वह न लगाया गया तो....'

'तो? क्यों चुप हो गयी?'

'स्त्रियों के लिए माला पिरोनेवाला माली बन जायेगा।'

'तुम भी क्या बात करती हो!'

'मैं सच कहती हूँ। पुत्र की बलि चढ़ाकर इस उदय को पाया है—इसे चित्तौड़ का चक्रवर्ती शासक बनाने के लिए, न कि काम-वन में कुसुम फेंकनेवाला कन्दर्प बनाने के लिए!'

कहते-कहते पन्ना की आँखें कुछ विस्तृत हो गयीं। वह जानती थी कि अपने खूनी कृत्यों के कारण बनवीर सारे राज्य में बदनाम हो गया है, और मेवाड़ी प्रजा और मेवाड़ी सामन्तगण उससे घृणा करने लगे हैं। वह अधीर हो गयी थी कि कैसे जल्दी-जल्दी उदय बड़ा हो जाये, बड़ा होकर अपने पिता की गद्दी पुनः प्राप्त करे, तथा दिल्ली और गुजरात को जीतकर चित्तौड़ के अधीन बनाए; और तब ऐसे वीर पुत्र का चित्तौड़ के सिंहद्वार पर वह स्वयं खड़ी होकर स्वागत करे! उदय में वह अपने मृत पुत्र की छबि देखा करती थी। गुजरात के सुलतान बहादुर-

शाह ने जब चित्तौड़ को जलाया, उस समय उदय दो वर्ष का था। इस दो वर्ष के कुमार को लेकर पन्ना बूँदी चली गयी थी, और वहाँ बूँदी के महाराव सूरभाण का उसने आश्रय लिया था। उदय की माता कर्णावती ने हुमायूँ के पास राखी भेजकर स्वयं जौहर-व्रत धारण किया, तब से पन्ना ही उदय की माता बन गयी थी।

उस समय बनवीर ही कुटुम्ब में सबसे वयस्क था। उसने जब साँगा के बालकों का रक्षण न कर उनके रक्त से अपना हाथ रँगना शुरू किया, तब से पन्ना का उदय के प्रति प्रेम और भी बढ़ गया था। अपने प्रिय बालक की आहुति देकर उसने उदय को बचाया। मातृत्व की भावना बहुत बढ़ गयी थी। अपने पुत्र सरीखे उदय के विषय में वह अनेक कल्पनाएँ किया करती, और इन कल्पनाओं को सत्य बनाने का वह प्रयत्न भी करती थी। ऐसा करने का उसे पूर्ण अधिकार भी था। अपने सच्चे शारीरिक और मानसिक मातृत्व की बलि चढ़ाकर, उसने मातृत्व का एक नया आदर्श उपस्थित किया था। और आदर्श ही क्या सत्य का स्वरूप नहीं है?

कल्पना, आदर्श और एषणा का अन्त नहीं! परन्तु जीवन का सृजन करते हैं, यही आदर्श, कल्पना और एषणा! पन्ना भी उदय के विषय में नयी सृष्टि रचने की कल्पना कर रही थी।

*

'किस घोड़े पर बैठेंगे?' रूपा ने उदय से पूछा।

'तुम कहो उस घोड़े पर!' उदय ने उत्तर दिया।

'ऐसी बात? इस बड़े घोड़े पर बैठें?'

'मुझे तो यही पशु पसन्द है। इसकी गरदन देखो! कैसी ऊँची रखता है! इसके पैर तो स्थिर रहते ही नहीं। शाबाश!' कहकर उदय ने घोड़े की गरदन थपथपाई। प्रसन्न होकर घोड़े ने अपनी गरदन से उदय के शरीर का स्पर्श किया।

'लेकिन आप सँभलकर बैठें! बड़ा ही पानीवाला जानवर है। कदा-

चित् नाला भी कूद जाये ।'

'मैं उससे लिपटा रहूँगा । तुम चिन्ता न करो ।' उदय ने उत्तर दिया। रूपा के मन में चिन्ता न हो, यह असम्भव था । वह उदय को सैनिकों की सभी कलाओं में प्रवीण बनाना चाहता था । घुड़सवारी अथवा कोई भी अन्य पुरुषोचित क्रीड़ा साहस बढ़ाती है । परन्तु साहस वय, समय और परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिए, नहीं तो वह हानिकारक होता है । रूपा यह जानता था कि बिना समझे साहस करने में कितने ही राजकुमारों ने अपने प्राण गँवाये हैं । इसलिए वह चाहता था कि उदय वीरोचित क्रीड़ाओं को कम-से-कम समय में सीखे, परन्तु बिना कोई हानि उठाये । उदय ने छोटे घोड़े पर रान जमाकर बैठना सीख लेने पर बड़े घोड़े की सवारी का आग्रह किया । रूपा को प्रसन्नता हुई । परन्तु उसने यह उचित समझा कि उस बालक अश्वारोही को बड़े घोड़े के सब लक्षण बताकर सतर्क कर दे । रूपा की सम्मति मिलते ही उदय बड़े घोड़े पर बैठ गया।

'आज हम लोग तालाब के रास्ते चलें ।' उदय ने कहा ।

'क्यों ?'

'है एक कारण; फिर कहूँगा ।'

'चलिए; जैसी आपकी मर्ज़ी ! लोग देखेंगे तो ज़रा संकोच में पड़ जायेंगे ।' कहकर रूपा दूसरे अश्व पर बैठा । रूपा का अश्व कुछ छोटा परन्तु शक्तिशाली था ।

उदय के घोड़े ने अपनी गति बढ़ाई, जिसे उदय ने नियंत्रित नहीं किया ।

'ऐसे नहीं; लगाम ज़रा खींचकर रखें ।' अपने से आगे निकलनेवाले उदय से रूपा ने कहा ।

'क्यों ?'

'कदाचित् यह चौंककर भागे; तालाब पर लोगों की भीड़ रहती है ।'

'मैं सँभाल लूँगा ।' कहकर उदय ने घोड़े की गति को सँभाला ।

घोड़ा उदय के संकेत को समझ रहा था। परन्तु सँभालते-सँभालते भी उदय का घोड़ा रूपा के अश्व से बहुत आगे निकल गया। रूपा उदय की प्रवीणता देखकर प्रसन्न हो रहा था।

रूपा ने दूर से देखा कि तालाब आते ही उदय ने अपना घोड़ा रोक दिया। पानी के घड़े सिर पर रखकर ले जानेवाली दो-चार पनिहारिनें भी वहाँ रूपा ने देखीं। अपने अश्व को तेज़ी से बढ़ाकर, जब रूपा उस स्थान पर पहुँचा, तब उदय एक पनिहारिन से बातें कर रहा था। उदय से बातें करनेवाली बाला वही नन्दिनी थी—मालिन मैना की पुत्री! रूपा को यह बात खटकी और उसे पन्ना का कथन याद आया।

'मेवाड़ में तो लड़कियाँ भी घुड़सवारी करना जानती हैं!' उदय की ओर देखे बिना नन्दिनी ने हँसते हुए अपनी एक सहेली से कहा।

'हम लोगों को बोलना उचित नहीं। तुम्हें क्या पड़ी है?' धीमी आवाज़ में दूसरी सखी ने कहा।

'परन्तु मेवाड़ के जिस बालक को, पुष्प-माला गूँथना भी नहीं आता वह घुड़सवारी करके क्या करेगा?' सखी के कथन की परवाह न करके नन्दिनी ने कहा।

एकाएक उदय अपने घोड़े को नन्दिनी के सामने ले गया और हँसकर बोल उठा—देखो नन्दिनी! मेवाड़ का बालक घुड़सवारी भी जानता है, और माला पिरोना भी। उस माला को वह किसे पहिनाये, यह भी जानता है।

उदय ने ज़ीन में छिपाकर रखी हुई एक बड़ी-सी पुष्पमाला निकाली और देखते-ही-देखते उसे नन्दिनी की ओर फेंका। नन्दिनी ने माला बीच में झेल ली, और उसे तोड़कर पुनः घोड़े की ओर फेंका। घोड़ा भड़ककर भागा!

रूपा के होश उड़ गये। उसने अपने अश्व को भी उदय के पीछे दौड़ाया। सब लोगों ने देखा कि उदय का घोड़ा हवा से बातें कर रहा है। वह नदी, नाले और पहाड़ियाँ पार करता हुआ, कहाँ जाकर रुकेगा,

इसका अनुमान लगाना कठिन था! मार्ग में मिलनेवाले बटोही परिस्थिति की विषमता का विचार करके अश्व को रोकने का प्रयत्न करें, इसके पहले ही वह कहीं का-कहीं निकल गया! देखनेवालों को यह भ्रम लगा कि उखड़ा हुआ यह तेज़ घोड़ा कहीं अपने बालक सवार को फेंक न दे। परन्तु मनुष्य की शक्ति के बाहर था उस घोड़े को चलकर या दौड़-कर पकड़ना। सब को आश्चर्य होता था यह देखकर कि वह किशोर अश्वारोही उस अश्व की गति को रोकने का प्रयत्न न करता था, अपितु गति की तीव्रता में उसे आनन्द आ रहा था। भय का तो कोई भी चिन्ह उसके मुख पर अंकित न था।

कोमलमेर दुर्ग के आस-पास कोसों तक पहाड़ियाँ फैली हुई थीं, और उन पर घनी झाड़ियाँ थीं। कोमलमेर नगर भी इन पहाड़ियों का एक भाग सदृश्य ही दिखलाई देता था। लम्बी मंजिल काटता हुआ वह घोड़ा एक छोटा-सा नाला पार कर गया, और कूदने के बाद सहसा वहाँ रुक गया। उदय के मुख पर मुस्कान थी।

'जिस अश्वारोहण को लोग बहुत ही कठिन बताते हैं, वह यही है न?' ऐसा विजय-सूचक भाव उदय के मुख पर उदित था। घोड़ा पसीने से भींग गया था। उसके अयाल थपथपाते हुए उदय ने पूछा—क्यों, बेटा! थक गये?

थोड़ी देर की दौड़ से थकनेवाला अश्व राजपूतों के किस काम का? उदय अभी तो उसे और आगे ले जाना चाहता था। कुछ देर तक उदय ने उसे खड़ा रहने दिया, परन्तु उसके बाद पुनः थपथपाकर आगे बढ़ने को प्रेरित किया। घोड़ा वहाँ से एक अंगुल भी नहीं हटा!

'अड़ियल बन गया है?' कहकर उदय ने एड़ लगायी। अश्व इस संकेत को पाकर भी आगे नहीं बढ़ा। ज़ोर-ज़ोर से श्वास लेते हुए वह बीच में हिनहिना उठा।

'आगे क्यों नहीं बढ़ता?'

घोड़े के कान खड़े होकर हिलने लगे, और पुनः हिनहिनाहट करते

हुए उसने पीछे हटने का प्रयत्न किया। परन्तु वह पीछे घूम न सका। वहीं, ज़रा हटकर अपने अगले पाँव से ज़मीन खोदने लगा, और भड़क-कर इधर-उधर देखने लगा।

उदय को न जाने क्यों अश्व पर क्रोध न आया। ऐसे सुन्दर अश्व को दण्ड देने की उसे इच्छा न हुई। ज़मीन खोदकर बार-बार चक्कर लगानेवाले उस सुन्दर पशु की गरदन पर वह थपकियाँ देता रहा, और उसके प्रत्येक अंग से प्रकट होनेवाले सौन्दर्य को देखता रहा। इतने ही में दूर से एक दूसरे अश्व के हिनहिनाने की आवाज़ आयी, जिसका उत्तर उदय के अश्व ने भी दिया, और तुरन्त उछलकर, दो पैरों पर खड़ा होता हुआ, दूसरी ओर कूद पड़ा। उदय अश्व से नीचे उतर गया।

उतरते समय उदय की दृष्टि नाले के सामने की झाड़ी की ओर गयी। वहाँ उसे दो अंगारे चमकते नज़र आये!

'क्या बात है?' उदय को कुतूहल हुआ। प्रकाश, रंग, गति और आकृति की ओर उदय का ध्यान सर्वदा आकृष्ट होता रहा और इनमें बसनेवाले सौन्दर्य को उसकी आँखें अपलक देखा करतीं। जलाशय के पानी में उठनेवाली लहर, पशु-पक्षियों की चाल, सुवासित पुष्पों की आकृति और आकाश के रंग देखने में वह प्रायः तल्लीन हो जाता था। देखनेवालों को यह आभास होता था कि यह आलसी किशोर बैठा हुआ व्यर्थ समय गँवा रहा है। परन्तु ऐसे समय तो वह बैठकर प्राकृतिक सौन्दर्य के आनन्द का अवगाहन करता, और अपने हृदय-भंडार को नयी-नयी ऊर्मियों से भरता रहता।

झाड़ी के बीच में ये अंगारे कैसे? पीछे घूमकर भागने का प्रयत्न करनेवाले घोड़े को बलपूर्वक रोककर उदय ने झाड़ी में ध्यान से देखा, उन दो अंगारों के आस-पास एक आकार भी था। आरम्भ में उस आकार के रंग और झाड़ी के रंग में कोई फर्क न लगा, परन्तु शीघ्र ही दोनों रंगों की विभिन्नता उसे साफ़-साफ़ दिखाई दी, और बातचीत से जिस व्याघ्र की कल्पना वह किया करता था, वह व्याघ्र प्रत्यक्ष रूप में

सामने आया ! छोटे-छोटे कान, विशाल मस्तक, शक्तिशाली मुख और नृपति-शोभन मुद्रा में बैठे हुए व्याघ्र को देखकर उदय को बड़ा ही आनन्द हुआ !

'यही वह व्याघ्र है, जिसके शिकार की बातें रूपा किया करता है ? ....इसका शिकार क्यों किया जाये ? यह तो मुझे किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता। इसे पालने में कितना आनन्द आये ? कैसे पैर फैलाकर बैठा है ? और बराबर मेरी ओर देख रहा है। दोस्त !'

टप्....टप्....बजनेवाली किसी दूसरे अश्व की टापों ने उदय की विचार-माला को भंग किया। वह घूमकर देखे इसके पहले ही रूपा घोड़े से कूदकर सामने आया। उसके हाथ में तलवार चमक रही थी।

'हरामखोर ! मेवाड़पति की ओर नज़र उठाने की धृष्टता करता है ?' कहता हुआ रूपा झाड़ी की ओर धँस गया।

'अरे रूपा ? यह क्या ? किसे गाली दे रहे हो ?' उदय ने पूछा।

'क्या बड़ी देर से देख रहे हैं ? मेरे तो प्राण उड़ गये ! घोड़ा इधर घूमा और मैं चिन्ता में पड़ गया।'

'क्यों ?'

'यहीं बाघ की माँद है। वह देखिए झाड़ी में बैठा हुआ है ! मैं आपके साथ था नहीं। कहीं वह आप पर झपटता, तो ?'

'यही बाघ है न ?'

'हाँ, कैसा सामने देख रहा है ? इसे क्या खबर कि ऐसी कितनी ही बिल्लियाँ मैंने एक-एक झटके में काट डाली हैं !' रूपा की दृष्टि व्याघ्र पर ही लगी थी। व्याघ्र ने भी शान्ति से नवागन्तुक सवार और घोड़े को देखा, तथा बिना हिले ही अपनी पूँछ को दो-तीन बार धीरे-धीरे हिलाया। व्याघ्र निश्चिन्त होकर बैठा रहा।

'तुम बाघ को बिल्ली कहते हो ? शास्त्रीजी मुझे रोज़ कहते हैं कि झूठ न बोलना चाहिए। ऐसे महाराजा-जैसे बाघ को तुम बिल्ली कहते हो ?' उदय ने कहा। उसका वाक्य पूरा भी न हुआ था कि सीत्कार से

रूपा ने उदय को चुप रहने का संकेत किया।

कुछ क्षण बाद हाथ में तलवार लेकर रूपा ने धीरे से उदय से कहा—कुछ भी न बोलिएगा। बाघ खड़ा हो गया है।

'न बोलने से बाघ पुनः बैठ जायेगा? भले ही वह खड़ा रहे!' उदय ने कहा। वह भी बराबर व्याघ्र को देख रहा था। परन्तु व्याघ्र कब उठकर खड़ा हुआ, इस बात का उसे पता न लगा।

रूपा की नज़र व्याघ्र पर ही थी। उदय की अनभिज्ञता पर उसे कुछ हँसी भी आयी। वातावरण पूर्ण शान्त था। पत्ती भी नहीं हिली, शाखाओं में भी कहीं खड़खड़ाहट नहीं हुई। प्रकृति क्षण-भर के लिए स्तब्ध रह गयी। उदय ने भी बोलना बन्द कर दिया। उसे ऐसा लगा, मानो वहाँ कोई नयी बात होनेवाली है। व्याघ्र को अनिमेष नेत्रों से देखनेवाले उदय को साश्चर्य भान हुआ कि झाड़ी व्याघ्र-विहीन हो गयी है।

'बाघ कहाँ गया?' उदय ने पूछा, मानो किसी खिलौने के विषय में प्रश्न करता हो!

'अच्छा हुआ, वह चला गया! नहीं तो एक बार उससे झड़प हो जाती, और ऐसी झड़प आपने अभी तक देखी नहीं....'

'लेकिन वह गया कहाँ?'

'पास की झाड़ी में।'

'वह कैसे गया? मैंने तो उसे जाते हुए देखा नहीं। और जाने की कोई आहट भी न मिली!'

'बाघ की चाल चींटी की चाल-जैसी होती है। वह सुनाई नहीं देती।'

'वह पुनः कब आयेगा?'

'यह कहना कठिन है। न जाने कब और कहाँ से प्रकट हो जाये! इसी लिए चारों ओर से सावधान रहना पड़ता है।'

'ठीक है; मैं सावधान रहूँगा। जब चाहे, आये। मैं एक बार उसे ध्यान से देखना चाहता हूँ।'

'चलिए, अब हम लोग लौटें।'

'बाघ को ध्यान से देखे बिना ही?'

'अब तो वह छिप गया। सामने आयेगा ही नहीं। कदाचित् कुछ देर में आये भी, तो सामने से नहीं; कुछ पीछे अथवा बग़ल में अचानक प्रकट हो जायेगा।'

'अच्छा, तुम पीछे की ओर ध्यान रखो, मैं बग़ल में देख रहा हूँ।'

'इस तरह देखने से वह नहीं मिलेगा। मैं आपको फिर कभी दिखाऊँगा। पहले ज़रा भाला चलाना सीख लें। ऐसे वक्त काम आता है।'

'आज से ही भाला चलाना सिखाओ।'

'यदि इस प्रकार भाला चलाने में आपकी रुचि रही तो दस दिन के अन्दर मैं आपसे बाघ का शिकार कराऊँगा। घोड़े भी कितने स्वामिभक्त होते हैं! वे जानते हैं कि बाघ पास में है, तब वे भागते नहीं, या हटते नहीं।' रूपा ने दोनों अश्वों को थपथपाते हुए कहा।

'अच्छा! घोड़े को पता लग गया कि यहाँ बाघ है, इसी कारण वह यहाँ रुका?' उदय ने पूछा।

'घोड़ा स्वयं यहाँ रुका था?'

'हाँ; रुका ही नहीं, उसने उछल-कूद भी बहुत की। इसी लिए तो मुझे उतरना पड़ा। उतरने के बाद मेरी दृष्टि बाघ पर पड़ी।'

'घोड़े ने उछल-कूदकर आपको संकेत दिया कि आप लौट चलें, स्थान निरापद नहीं है। परन्तु आप तो उसकी पीठ से नीचे उतरे, और जैसे कोई बकरा बैठा हो, वैसे उस बाघ की ओर शान्ति से देखने लगे।'

'घोड़े को कैसे खबर लगी कि यहाँ बाघ है?'

'घोड़े को दूर से ही बाघ की गन्ध आती है। अच्छा, अब बैठ जाइए घोड़े पर! मैं रास्ते में आपको बाघ की सब बातें सुनाता चलूँगा।'

इच्छा न होने पर भी रूपा के आग्रह को स्वीकारकर, उदय घोड़े पर बैठा। प्रारम्भ में दोनों सवार खूब सावधानी से चले, परन्तु जब निरापद स्थान आया, तब उन्होंने घोड़ों को तेज़ी से बढ़ाया, और देखते-

ही-देखते दुर्ग में पहुँच गये। प्रारम्भ में सावधानी से चलना आवश्यक था, क्योंकि यह कहना कठिन था कि व्याघ्र कहाँ से निकलकर आक्रमण कर दे !

नन्दिनी ने फूलों की माला फेंककर घोड़े को भड़का दिया है और वह उदय को लेकर भागा है, यह बात सारे कोमलमेर में फैल गयी थी। इस समाचार को सुनते ही अविनाश ने कुछ सवारों को उदय के पीछे भेजा और पन्ना तो कब की चिन्तित होकर उदय के लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। घोड़े पर जो बैठता है, वह कभी गिरता भी है, पन्ना यह जानती थी, परन्तु उदय की उम्र अभी घोड़े पर से गिरकर चोट खाने के योग्य भी नहीं थी, इसी कारण उसे चिन्ता हो रही थी।

परन्तु उदय घोड़े से गिरे बिना आया; इतना ही नहीं, वह तो वन में रहनेवाले वनराज को भगाकर आया, यह समाचार जब रूपा ने उसे सुनाया, तब उसका हृदय भय तथा आनन्द से भर गया। पन्ना के मन में अनेक विचार आये। व्याघ्र उदय के ऊपर झपटता, तो ? यह बात अशक्य तो नहीं थी। इस विचार ने पन्ना के हृदय को कम्पित कर दिया। परन्तु जब रूपा के मुख से उसने सुना कि बिना किसी शस्त्र के यह किशोर वय का राजकुमार निर्भय होकर घोड़े से उतरा और व्याघ्र को इस प्रकार देखता रहा, मानो किसी निर्जीव खिलौने को देखता हो, तब तो आनन्द के जलधर ने पन्ना के हृदय-प्रदेश को प्लावित कर दिया। उसे विश्वास होने लगा कि उदय के लिए किया हुआ उसका आत्म-बलिदान विफल न जायेगा। इसके बाद जब पन्ना को मालूम हुआ कि उदय उसी दिन से भाला और तलवार चलाने का प्रशिक्षण लेने का हठ किये बैठा है, तब तो उसका आनन्द द्विगुणित हो गया !

उदय की इस इच्छा की खबर जब आशा शाह को लगी, तब उसने एक छोटे-से दरबार की योजना की और उसमें सब लोगों के सामने अपने तथाकथित भतीजे उदय को अपनी छोटी-सी रत्न-जटित तलवार और एक भाला भेंट किया।

'देखो बेटा उदय ! मैंने तो भाला-तलवार चलाना प्रायः छोड़ दिया है। परन्तु एक प्रसंग ऐसा आया था, जब मैंने ही अपनी तलवार से महाराणा संग्रामसिंह पर पड़नेवाले दस प्रहारों का निवारण किया था। कोमलमेर की जागीर-मुझे उसी तलवार के प्रताप से मिली। अपने बचपन में जिस तलवार और भाले से मैंने शस्त्र-विद्या सीखी थी, उन्हीं को, आज मैं तुम्हें भेंट में देता हूँ।' कहकर आशा शाह ने अपने हाथ से वे शस्त्र उदय के शरीर पर बाँधे।

इन शस्त्रों से सज्जित छोटा-सा उदय बड़ा ही सुन्दर लग रहा था। एकत्रित समुदाय उदय की कान्ति देखकर हर्षित हुआ। पन्ना के नेत्रों से तो हर्षाश्रु की धाराएँ बहने लगीं।

रूपा के नेतृत्व में कोमलमेर के तीन-चार निष्णात शस्त्र-चालक उदय को शस्त्र-विद्या की शिक्षा देने लगे।

३

इतना होने पर भी उदय ने माला पिरोने का काम बन्द न किया ! प्रतिदिन प्रातःकाल वह फूल चुनकर लाता। उनकी माला बनाता। और बाग में जब नन्दिनी पुष्प लेने आती तब उसे सहर्ष पहिना देता।

पहिले दिन उदय ने नन्दिनी के पास जाकर कहा था—देखो, नन्दिनी ! माला बनाना मैं सीख गया !

नन्दिनी ने मुँह बिचकाया और कोई उत्तर नहीं दिया।

'बोलती क्यों नहीं ?' उदय ने पूछा।

'मर्ज़ी हमारी !'

'घड़ा फोड़ दिया, इसी लिए नहीं बोलती ?'

'उसका तो मैं ऐसा बदला लेनेवाली हूँ ...'

'सो लेना, मगर मुख से बोलो तो सही ?'

'सब लोग कहते हैं, तुमसे बोलना अच्छा नहीं।'

'क्यों ?'

'आप ठहरे बड़े आदमी ! जो चाहे सो करें, परन्तु हम ज़रा ज़ोर से भी नहीं बोल सकते ! मैं तो झगड़ा किये बिना रह नहीं सकती, इसलिए चुप रहना ही अच्छा !'

'तो तुम झगड़ा करो न ? मैंने कब रोका ? तुम जब झगड़ा करती हो, तब बड़ी सुन्दर लगती हो....'

जीभ निकालकर तिरस्कार का अभिनय करती हुई नन्दिनी बिना उत्तर दिये वहाँ से लौटने को उद्यत हुई ।

'यह माला तो लेती जाओ ?' उदय ने कहा।

'ना, कह दिया न एक बार !'

'दूसरी बार हाँ कहो नहीं तो उस दिन की भाँति रास्ते में पहिनाऊँगा ।'

'उसी जगह रास्ते में माला तोड़कर फेंक देते मुझे ज़रा भी देर न लगेगी ।'

'अच्छा ! वैसा ही करना। मुझे वह भी प्रिय लगेगा। उस दिन तुम्हारे माला फेंकने पर मेरा घोड़ा पवनवेग से उड़ा था ।'

'लगा प्रिय ! घोड़े पर बैठने से क्या हो गया ? बाघ देखकर तो भाग आये न ?'

'मैं भाग आया ? किसने कहा ?'

'मैं कहती हूँ ।'

'किस आधार पर ?'

'गाँव में चर्चा हो रही है कि तुम बाघ के सामने जाकर खड़े हो गये। यह सच है ?'

'हाँ ।'

'यह तो बताओ कि तुमको बाघ का डर लगा था नहीं ?'

'ज़रा भी नहीं। मुझे कभी भय लगता ही नहीं ।'

'तब तो तुमने बाघ को मारा भी होगा ?'

'मैं उसे क्यों मारता ?'

'तब तो बाघ ने तुमको मारा होगा ?'

'हम लोग एक-दूसरे को क्यों मारते ?'

'तब एक-दूसरे से गले मिलकर लौटे होगे !'

'बाघ को गले लगाने की मेरी इच्छा अवश्य होती है।'

'तब या त उस बाघ में प्राण न होंगे या तुम्हीं निर्जीव होगे। बाघ सामने मिले और एक राजकुमार उसे जीता छोड़कर आये !'

'तुम चाहो तो मैं तुम्हारे सामने ही बाघ को बुलाऊँ, उसके पास जाकर खड़ा रहूँ, और उसकी पीठ पर हाथ फेरूँ, इससे अधिक कुछ चाहिए ?'

'ऐसा करोगे, तो मैं तुम्हारी दी हुई माला पहिन लूँगी।'

'इस वक्त न पहिनो, पर, अपने पास रख तो लो ?'

न जाने क्यों, नन्दिनी ने माला ले ली। कदाचित् व्याघ्र को देखने की आशा और उत्साह ने उसके मन को मृदुल बना दिया हो! इसके बाद तो नन्दिनी प्रति दिन उदय की माला ले लेती और एकान्त में जाकर उसे पहिन भी लेती!

★

उदय की दी हुई माला वह प्रति दिन क्यों पहिनती थी? नन्दिनी स्वयं न समझ सकी कि वह क्यों इन मालाओं को लेती और क्यों पहिनती है!

उदय एक सुन्दर किशोर था, क्या इसलिए?

ऐसे कितने ही सुन्दर किशोर कुम्भलमेर की गलियों में भटका करते थे!

उदय श्रीमन्त का भतीजा था, इसलिए तो नहीं?

नन्दिनी ने अपना कन्धा हिलाया। श्रीमन्तों की वह ज़रा भी पर-वाह न करती। फूल लेने के लिए और पुष्प-मालाएँ देने के लिए उसे बराबर श्रीमन्तों के घरों में जाना-आना पड़ता था। वहाँ उसे कोई ऐसी

बात नज़र न आई, जिससे वह चकाचौंध हो जाये। बड़े महलों के खण्ड सजे रहते हैं, परन्तु नन्दिनी की अपनी छोटी-सी कोठरी भी कुछ कम नहीं थी। फूलों से वह अपनी कोठरी को रोज़ नये-नये ढंग से सजाती। इतने फूल और फूलों की ऐसी सजावट महलों में कभी न होती। महलों के बड़े-बड़े कक्ष देखने में खाली मालूम होते थे— मानो भूतों के डेरे हों! और नन्दिनी की अपनी कोठरी? छोटी, परन्तु कितनी सुन्दर और सजीव! वहाँ की प्रत्येक वस्तु ऐसी मालूम होती थी, मानो अभी बोल उठेगी!

हीरा-मोती के आभूषण भी नन्दिनी को प्रभावित न कर सके। स्वर्ण से भी अधिक पीले और कान्तिवान घास-फूस नन्दिनी ने देखे थे, और उसके आभूषण बनाकर पहिने भी थे। गुंज का रंग माणिक से कम लाल नहीं होता! ऐसी अनेक गुंज-मालाएँ पहिनकर, उसने माणिक के कण्ठे पहिननेवाली कमनीय किशोरियों के हृदय जीत लिये थे। गुलछड़ी के पुष्प चाँदी से कम श्वेत नहीं होते! मौलसिरी अथवा कृष्ण-कमल की यथार्थ आकृति कौन-सा कारीगर सोने-चाँदी में गढ़ सकता है? श्रीमन्तों के वस्त्राभूषणों को देखकर नन्दिनी को कभी भी लघुता का अनुभव नहीं होता!

और उदय भी कब मूल्यवान वस्त्राभूषण धारण करता था? पुष्पों के अतिरिक्त अन्य कोई शृंगार-साधन उसे पसन्द न आता।

उदय की घुड़सवारी ने तो नन्दिनी को आकर्षित नहीं किया! राजपूतों के प्रदेश में घुड़सवारी कोई नयी बात नहीं! फिर नन्दिनी तो स्वयं घोड़े पर बैठना जानती थी। कोमलमेर के कितने ही अश्वारोही सैनिक इस चतुर बालिका को अश्वारोहण सिखाने के लिए तैयार थे। और वह इस कला को सीख भी गयी थी, कदाचित् उदय के सीखने से भी पहले!

उदय उसके साथ बातें करता—खेलने का प्रयत्न करता, कभी-कभी उसको चिढ़ाता था, क्या इसी कारण वह उसकी पुष्पमाला पहिनती

है ? परन्तु उससे बातें करनेवाला, उसे चिढ़ानेवाला अकेला उदय ही न था। अनेक किशोर उससे बातें करते, और उसे चिढ़ाकर उसकी गालियाँ सुनने में आनन्द मानते। जितने बालकों के साथ नन्दिनी खेलती थी, उतने बालकों का साथ कोमलमेर की अन्य किसी बालिका ने न किया होगा !

तब उदय की ही दी हुई माला नन्दिनी क्यों धारण करती थी ?

एक बार जब तिरस्कार करके उदय की माला उसने फेंक दी, तब बिना किसी कारण के उसने उदय की मालाएँ पहिनना फिर क्यों शुरू कर दिया ?

नन्दिनी की समझ में कुछ नहीं आता।

जब कोई बात उसकी समझ में न आती तब वह गाने लग जाती। जब वह अकेली रह जाती तब दर्पण में अपना मुख देखा करती। नदी अथवा तालाब के किनारे जब उसे एकान्त मिलता, तब वह पानी में अपना प्रतिबिम्ब देखती। धूप या चाँदनी में चलते समय वह इस बात का खयाल रखती कि उसकी परछाईं भी कुरूप न हो !

उसे इस बात का गर्व था कि धनिक-वर्ग की बहुत-सी लड़कियों से वह कहीं अधिक सुन्दर थी। रूप का भान होने के पहले से ही गर्व उसके स्वभाव में विद्यमान था। जब उसे अपने सौन्दर्य का भान हुआ, तब गर्व का बढ़ना स्वाभाविक ही था। परन्तु उसके आत्मगौरव की भावना को गर्व कैसे कह दिया जाये ? किसी से प्रभावित न होना, किसी से भी नहीं दबना—इसे गर्व कैसे कह दिया जाये ?

छोटी उम्र का उदय इधर कुछ समय से शिकार में व्यस्त रहता है, इसलिए तो वह उदय की दी हुई मालाएँ नहीं पहिनती ? परन्तु शिकार में व्यस्त रहने से क्या ? कोई दो वर्ष पहले शिकार करना सीखता है, कोई दो वर्ष बाद ! क्षत्रियों के लिए शिकार खेलना कोई नयी बात तो है नहीं

और निशाना लगाने में नन्दिनी स्वयं भी किसी से कम न थी !

गुलेल और तीर से जिस लक्ष्य को चाहती वेध देती। अभी तक उसने तलवार या भाला चलाना न सीखा था; परन्तु यह कार्य भी उसके लिए कठिन न था। दो-चार बार प्रयत्न करने से इसे सीखना भी सुलभ था। जिस जगह उदय शस्त्र चलाना सीखा करता, वहाँ किसी-न-किसी बहाने नन्दिनी पहुँच जाती और ध्यान से शस्त्रों के दाँव देखती। सब दाँव उसकी समझ में आ गये थे। अब देर केवल इतनी ही थी कि शस्त्र उसके हाथ में आ जायें!

शस्त्र न मिलें तो कोई हर्ज़ नहीं! नन्दिनी लाठी लेकर भाले-तलवार का दाँव चलाती। कभी-कभी अपने घर के सामने अथवा गली में वह लाठी लेकर अभ्यास करती। इस खिलवाड़ पर वह अपनी माता और मुहल्ले की अन्य महिलाओं की भर्त्सना भी सहा करती!

कभी-कभी उसके स्वप्नों में उदय आता। पिछली रात उसने स्वप्न में देखा कि उदय से उसकी शस्त्र चलाने की स्पर्धा चल रही है, और उस स्पर्धा में उदय ने अपनी पराजय स्वीकारकर, अपनी तलवार नन्दिनी के पैरों पर रख दी है! यह स्वप्न नन्दिनी को प्रिय लगा या नहीं, यह स्वयं उसकी समझ में न आया। परन्तु ऐसे स्वप्न बराबर आते रहें यह कामना उसे अवश्य हुई। पिछली रात के स्वप्न को वह याद करती बैठी थी, और स्वप्न की विविध रंगी स्मृति को अपनी जाग्रत अवस्था की कल्पनाओं से अधिक सुन्दर बना रही थी। इतने ही में उसकी माता ने आकर कहा—बेटी! आज फूल लेने नहीं जाना है?

'मैं तो तैयार ही हूँ। बैठी तुम्हारी राह देख रही थी।'

'आज मैं न आ सकूँगी। जैन-मन्दिर की मालाएँ मुझे इसी समय गूँथ देनी हैं। तुम्हीं जल्दी जाकर फूल ले आओ न?'

पुनः उदय से भेंट होगी, और वह माला देगा! यही प्रति दिन का क्रम था। इसका क्या किया जाये? प्रायः नन्दिनी और उसकी माता प्रातःकाल सूर्योदय के पहले ही फूल लेने जाया करती थीं—कभी-कभी तो अँधेरे मुँह ही वे बगीचे में पहुँच जातीं। उस समय भी, वहाँ उदय

उपस्थित रहता ! उदय से बचने के लिए वे कभी सूर्योदय के बाद, काफ़ी दिन चढ़ जाने पर बगीचे में पहुँचतीं। उस समय भी शास्त्रीजी और रूपा की नज़र बचाकर आया हुआ उदय उनको वहाँ मिल जाता। जिस प्रकार नित्य नियमपूर्वक वृक्षों पर पुष्प खिलते, उसी प्रकार उदय भी बगीचे में उदीयमान होता। पुष्प और उदय—नन्दिनी के लिए अनिवार्य हो गये थे। धीरे-धीरे हाल ऐसा हो गया था कि यदि निश्चित स्थान पर उदय नज़र न आये तो नन्दिनी की आँखें अधीर बनकर उसे खोजने लगतीं। आज तो मा साथ में जानेवाली न थी। बगीचे के उस आच्छादित निकुंज में उदय और नन्दिनी अकेले ही मिलेंगे। तब क्या होगा ? क्षण-भर के लिए नन्दिनी के हृदय ने कम्पन का अनुभव किया !

उसे किसी का भय तो था नहीं। तब हृदय का यह कम्पन कैसा ? इधर कुछ समय से उसे अनुभव होने लगा था कि भय के बिना भी उसका कलेजा कभी-कभी धड़कने लगता है। भय हो या न हो, यह हृदय-कम्प कैसा ? ऐसे कम्पन का तो सामना ही करना चाहिए, नन्दिनी ने निश्चय किया।

'अच्छा मा ! मैं अकेली ही जाकर फूल ले आऊँगी।' कहकर उसने फूल रखने के लिए डाली उठायी और बगीचे की ओर चली। कोमलमेर का दुर्ग—और दुर्ग का बगीचा उसके घर से दूर न था। अभी सूर्योदय में विलम्ब था। उदय शायद अभी जागा भी न हो ! जागा भी होगा, तो रूपा से शस्त्र चलाना सीखता होगा।

'बगीचे में वह हो, या न हो ! मुझे क्या ?' उसके मन में विचार आया। परन्तु उसकी यह विचार-श्रेणी वहीं रुकी नहीं। यदि वह बगीचे में न हो, तो कहाँ होगा ? उसकी विचार-श्रेणी आगे बढ़ी। बगीचे में पहुँचने पर उसने उदय को देखा नहीं। प्रति दिन वह उस मौलसिरी अथवा पारिजात पादप के नीचे बैठा रहता था। आज वहाँ नहीं था तब वह कहाँ बैठा होगा ?

नन्दिनी की इच्छा हुई कि वह उदय को धीमी आवाज़ से पुकारे। आज मा भी न थी, और उदय भी न था। फूलों से लदा हुआ बगीचा उसे आज खाली-खाली क्यों लग रहा था? उसने चारों ओर नज़र दौड़ाई। वहाँ कोई न दीख पड़ा। ताली बजाने से कोई आयेगा या नहीं? कभी-कभी अपनी माता का कहना न मानकर वह सीटी बजाकर गाती थी, यह बात उसे याद आयी। इस समय वह सीटी बजाकर गाना गाये तो कैसा रहे? क्या कोई आयेगा? परन्तु 'कोई' कौन? दरबान? उद्यान-रक्षक? दासी? नौकर?

'ऊँहूँ। ताली या सीटी बजाना तो तभी सफल हो, जब उदय आये!' नन्दिनी के मन में विचार आया।

कुछ समय बाद उसने दुर्ग के गवाक्षों की ओर दृष्टि डाली। खुले हुए किसी भी गवाक्ष में कोई आदमी न था। घने वृक्षों के नीचे और हरी-हरी वल्लरियों की जाली के पीछे उसने ध्यान से देखा। उदय कहीं न था। फूल चुनना छोड़ वह उदय की शोध में गयी। इतने में ही उसे ऐसा आभास हुआ कि पास के बड़े वृक्ष के पीछे कोई चल रहा है। कदाचित् यह भ्रम-मात्र हो! परन्तु जाकर देखने में हानि ही क्या?

यह वृक्ष बहुत बड़ा था। उसके तने की आड़ में चार आदमी सरलता से छिप सकते थे। नन्दिनी उसके पीछे देखने लगी। वृक्ष के पास पहुँचते ही उसने अनुभव किया कि उसकी आँखें बन्द हो गयी हैं।

उसकी आँखें किसने बन्द की हैं? किसका इतना साहस कि उसे स्पर्श कर उसके किसी अवयव को काम करने से रोके?

'उदय! छोड़ दो!' आँखों पर दबी हुई हथेलियों को छुड़ाते हुए नन्दिनी ने कहा।

'उदय नहीं है।'

'झूठ!' कहकर आँखों पर दबे हुए हाथों में नख गड़ाकर चिकोटियाँ काटीं। नख इतने तीक्ष्ण थे कि उनके आघात के आगे हाथ टिक न सके। नन्दिनी की आँखें खुल गयीं।

'बिच्छू के डंक से भी ज़्यादा तेज़ तुम्हारे ये नख हैं !' हाथ सहलाते हुए उदय ने हँसकर कहा ।

'तब और करती क्या? भला, इस तरह भी कोई शरारत करता है ?'

'इसमें शरारत कैसी ? भाट लोग ऐसी बहुत-सी बातें सुनाते हैं, जिनमें कितने ही राजकुमार और राजकुमारियों के परस्पर आँखें बन्द करने के प्रसंग आते हैं ।'

'तुम राजकुमार होगे; मैं तो राजकुमारी नहीं हूँ ?'

'ऐसी बहुत-सी कुमारियाँ हो गयी हैं, जो राजकुमारी न होते हुए भी राजाओं की रानियाँ बन गयीं !'

'जाओ, जाओ ! फिर कभी ऐसी बात मुख से निकालोगे, तो मैं बगीचे में पैर न रखूँगी । कोई देखे, तो क्या कहे ?'

'क्या कहेगा ?'

'अब तुम और हम दोनो बड़े हो रहे हैं, इसका खयाल है ? मेरी या तुम्हारी मा हम दोनो को इस प्रकार देख ले, तो मार ही डाले !'

'परन्तु तुम यह क्या कह रही हो, क्या कर रही हो, यह मेरी समझ में नहीं आता ।'

'समझ में न आता हो, तो जैसा मैं कहूँ, वैसा करो ।'

'मंजूर ! परन्तु देखो, आज रूपा नहीं है और कोई भी नहीं है । तुम्हारी इच्छा हो तो हम लोग चलकर घड़ी-दो घड़ी में बाघ का शिकार कर आयें !'

'इस समय बाघ मिलेगा ?'

'मिलेगा । पता लगाकर मैं कह रहा हूँ । रूपा यदि आ जायेगा, तो तुमको साथ न ले जा सकूँगा ।'

'क्यों ?'

'मैंने दो-तीन बार रूपा से कहा कि वह तुम्हें भी साथ ले; परन्तु वह तैयार नहीं होता, ना ही ना कहता है । दो दिन से रूपा और पन्ना भील-वास में गये हैं; उनको लौटते अभी दो दिन और लगेंगे । इस

बीच चलना हो तो मेरे साथ चलो।'

'क्या तुम सच्चे बाघ की बात कर रहे हो?'

'तब इन पहाड़ों में क्या खिलौने के बाघ हैं? सच्चा जीवित बाघ तुम्हारे सामने आयेगा।'

'बहुत देर तो नहीं लगेगी?'

'तुम जिस समय पानी भरने जाती हो, उस समय तक लौट आयेंगे। चलो, घोड़े तैयार हैं।'

'एकाध तलवार और भाला मुझे भी दो।'

'तुम क्या करोगी?'

'वाह! क्या अकेले तुम्हीं शिकार करना जानते हो? आज तुम्हारे साथ मैं भी शिकार खेलूँगी।'

नन्दिनी फूल चुनना भूल गयी, और नये रोमांचकारी अनुभवों का आनन्द लेने के लिए तैयार हो गयी—घुड़सवारी करना, हथियार चलाना, गाँवों और जंगलों की सैर करना, बाघ का शिकार करना, और यह भी सब उदय के साथ! इससे अधिक रोमांचक प्रसंग उसके जीवन में कब आयेंगे?

अभी गाँव की बस्ती पूरी जागी भी न थी। इतने में तो उदय और नन्दिनी घोड़ों पर बैठ दुर्ग-द्वार को पारकर, वन में पहुँच गये।

कामलमेर के निकट ही पहाड़ी जंगल था, जिसमें अनेक हिंस्र प्राणी पाये जाते थे। शिकार तो सैनिकों का प्राथमिक युद्ध-पाठ माना जाता है। इसलिए उदय को उसमें अब कोई विशेषता न प्रतीत होती थी। पहिले जब-जब वह शिकार के लिए निकलता, तब-तब रूपा अथवा अन्य कोई शिकारी सर्वदा उसके साथ रहता; आज उदय के साथ कोई दक्ष और अनुभवी शिकारी न था। परन्तु क्या उदय स्वयं एक अनुभवी शिकारी न था? और साथ में नन्दिनी भी तो आयी थी! इस समय दोनों के उत्साह का पार न था। ऐसा मालूम होता था कि ये शस्त्रों से लैस किशोर और किशोरी दिग्विजय करने निकले हैं!

मार्ग में एक-न-एक बहाने से वे दोनों एक-दूसरे को देखते जाते थे। दोनों के मस्तिष्क में आज एक मनोहर काव्य की सृष्टि हो रही थी। दोनों मुक्त थे, तथापि एक-दूसरे की ओर का आकर्षण उनको छोड़ता न था, यह बात अभी तक उनके ध्यान में न आयी थी। उदय को केवल इतना ही भान था कि शस्त्रों को लेकर घोड़े पर बैठी हुई नन्दिनी अपूर्व सुन्दरी लग रही थी! और वह भी इस बात का अनुभव कर रही थी कि यों सुन्दर मृदु स्वभाव का दीख पड़नेवाला उदय शस्त्र-सज्ज होकर जब घोड़े पर बैठता है, तब एक दर्शनीय योद्धा बन जाता है। मीराँ के कृष्ण ऐसे ही तो न होंगे? परन्तु कृष्ण तो श्याम थे, और यह उदय तो गौर-वर्ण है।

'नन्दिनी! थकान तो नहीं लगी?' एक विकट झाड़ी में प्रवेश करते हुए उदय ने पूछा।

'इतने ही में थक जाऊँगी? जिस दिन मैं थकूँगी, उस दिन जीवित न रहूँगी।' नन्दिनी ने उत्तर दिया।

'हम यहीं उतर जायें, और घोड़ों को छोड़ दें! उनकी आदत है, वे इधर-उधर चरेंगे। अथवा लाओ, उन्हें बाँध ही दें।'

दोनों घोड़े से नीचे उतरे। उतरते-उतरते नन्दिनी ने पूछा—और हम लोग?

'हम लोग दबे पाँव झाड़ी में और अन्दर जायेंगे। डरना मत।' उदय ने कहा।

'भय की बात करोगे, तो मैं फिर तुम्हारे साथ आऊँगी नहीं।' नन्दिनी ने ज़रा रुककर कड़े शब्दों में कहा।

'हम लोग जरा और आगे चलेंगे तो झाड़ी की आड़ में पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टानें मिलेंगी। उनके बीच किसी एक गुफा में बाघ बैठा होगा। मैं कल ही देख गया हूँ।'

★

घोड़ों को बाँध दबे पाँव दोनों किशोर शिकारी आगे चले। चारों

ओर सन्नाटा छाया हुआ था। अनभिज्ञ आदमी को बिना बाघ के भी ऐसा सन्नाटा भयप्रद लगे। दूर पर कोई जंगली चिड़िया दो-एक बार बोलकर चुप हो गयी; एकाध गिलहरी एक वल्लरी पर से दूसरी वल्लरी पर कुछ पत्तों को हिलाती हुई शीघ्रता से दौड़ गयी; एक-दो कीट-पतंग यकायक उड़कर अदृश्य हो गये।

'बाघ कहीं से भी निकल सकता है, न उदय?' नन्दिनी ने पूछा।

'हाँ।' उदय ने छोटा-सा उत्तर दिया। छोटा ही नहीं, बहुत धीमी आवाज़ में भी!

'ज़रा भी शब्द होने से बाघ भाग जाता है?' कुछ देर चुप रहकर नन्दिनी ने पुनः पूछा।

'हाँ।'

'एक बार भाग जाने के बाद वह फिर लौटकर नहीं आता?'

'देखो नन्दिनी! हम लोग शिकार करने आये हैं, बातें करने के लिए नहीं।' चलते-चलते नन्दिनी की ओर देख ज़रा कठोरतापूर्वक उदय ने कहा!

'तो क्या हम लोगों की बातें बाघ की समझ में आ जाती हैं?' नन्दिनी ने भी मुखमुद्रा कड़ी करके उत्तर दिया।

'बाघ के सामने, जहाँ तक हो सके, बोलना ठीक नहीं।'

'अरे, देखो-देखो, वहाँ क्या दौड़ गया?' एक झाड़ी की ओर उँगली-निर्देश करते हुए नन्दिनी ने कहा। झाड़ी में कुछ हलचल देखकर नन्दिनी उदय की सलाह भूल गयी।

'मैं जानता हूँ, तुम बोलो मत।' उदय ने कहा।

'धूल और पत्थर! तब बताओ कौन-सा प्राणी दौड़ गया?'

'खरहा।'

'खरहे को तो बाघ अवश्य मार डालता होगा।'

'इस तरह बकवास करोगी तो निश्चय ही बाघ हम दोनों को मार डालेगा।'

'मैं कहाँ बोलती हूँ ?' नन्दिनी ने सच कहा। उसे कभी ऐसा आभास ही न होता था कि वह अधिक बोल रही है। अन्य लोगों के अभिप्राय भले ही इसके विरुद्ध हों!

उदय रुककर खड़ा हो गया। इस झाड़ी की गहनता से कहीं अधिक परेशानी उसे नन्दिनी की बातों से हो रही थी। उसे लगा कि बाघ का बध करना सरल है, परन्तु नन्दिनी को चुप रखना सरल नहीं! नन्दिनी को चुप रखने का कोई मार्ग न दीख पड़ने से वह लाचार होकर मस्तक पर हाथ रख उस विचित्र बालिका को देखने लगा। यह बहुभाषिणी बालिका झाड़ी में भी अद्भुत दृश्य खड़ा कर रही थी।

'मेरी ओर इस तरह क्या देख रहे हो?....क्या मैं ही बाघ हूँ ?'

'तुम बाघ से भी अधिक भयंकर हो!'

'अच्छा लो, अब मैं बोलूँ तो मुझे अपनी ही कसम....'

'देखो, इधर देखो....हिले-डुले बिना....इस झाड़ी के बाहर....वे पत्थर की चट्टानें देखीं! अरे, एक नहीं दो हैं—बाघ और बाघिन.....' नन्दिनी का हाथ पकड़ उदय ने उसे बोलने से रोक दिया और धीरे से व्याघ्र युगल को दिखाया।

नन्दिनी ने स्थिर दृष्टि से वनराजा और वनरानी को देखा। दोनों एक बड़ी चट्टान पर एक-दूसरे का स्पर्श किये बैठे थे। धूप वहाँ कहीं से भी आती न थी, और दिन का प्रकाश भी सघन वृक्षराजियों में से छन-कर मन्द ही आता था। ऐसा मालूम होता था मानो यहाँ सायंकाल अथवा अरुणोदय का समय हो। यह शार्दूल-युगल अपनी स्थिर छोटी-छोटी आँखों से निर्भय चक्रवर्ती की छटा से अपने आस-पास की सृष्टि का अवलोकन कर रहा था। उनके भव्य मुख डरावने अवश्य थे, परन्तु देखने में तत्वज्ञानी सरीखे लगते थे। कैसे गौरव के साथ वे बैठे हुए थे! मृदुता, दैन्य, कार्पण्य अथवा चाटुकारिता का लेश भी उनके मुख पर दीख न पड़ता था। अपनी श्रेष्ठता, शक्ति और सत्ता का उन्हें पूरा-पूरा ख़याल था। शत्रु से रहित किये हुए अपने वन-साम्राज्य की श्री को

सानन्द देखनेवाले इस व्याघ्र-युगल में से बाघिन ने कुछ समय बाद सहसा अपना मस्तक बाघ के ऊपर डाल दिया।

नन्दिनी हँस पड़ी। उसने अपनी हँसी को रोकने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह रुकी नहीं। हँसी बहुत दबी हुई थी; परन्तु वह व्याघ्र-युगल के कान तक पहुँच ही गयी। जिसकी श्रवणेन्द्रिय पत्ते के हिलने की भी आवाज़ सुन लेती है, वह मनुष्य की हँसी को, चाहे वह कितनी ही दबी हुई क्यों न हो, सुन न सके, यह कैसे सम्भव था? बाघिन ने तुरन्त अपना मस्तक उठा लिया। व्याघ्र-युगल सतर्क होकर जिधर से हास्य-ध्वनि आयी थी, देखने लगा। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि ने उदय और नन्दिनी को देख लिया, ऐसा उनकी चेष्टा से साफ़ मालूम होता था। दोनों अपनी प्रणय-चेष्टा से लज्जित तो नहीं हुए?

बिजली की त्वरा से उठकर उन्होंने अपना स्थान छोड़ा। व्याघ्र ने दो-एक भयंकर छलांगें मारीं और पत्थर की चट्टानों पर कूदता हुआ एक पहाड़ी टीले के पीछे जाकर अदृश्य हो गया। बाघिन इन्हीं चट्टानों के बीच में स्थित किसी गुफा में चुपचाप चली गयी। अनिमेष नेत्रों से उदय और नन्दिनी यह दृश्य देखते न होते, तो उनको पता भी न चलता कि क्षण-मात्र में ये दोनो प्राणी कहाँ चले गये!

'मेरे हँसने से ये चले गये, क्यों?' नन्दिनी ने ज़रा शरमाकर पूछा।

'कोई हर्ज़ नहीं! मात्र अब सावधानी अधिक रखनी होगी।' उदय ने उत्तर दिया। सच्चा शिकारी, सच्चा खिलाड़ी और सच्चा योद्धा अपने साथी का दोष देखता ही नहीं; और यदि देखता है, तो कभी मुँह से कहता नहीं।

'क्य?'

'यों भी मुझे अकेले बाघ के ही मिलने की आशा थी। यहाँ सामने आये दो, और आकर न जाने कहाँ छिप गये!'

'तब लौटना है?' नन्दिनी ने पूछा। किसी प्रकार के भय के कारण उसने यह प्रश्न न किया था। उसने तो देखा कि उदय के सिर अधिक बोझा आ गया है, इसलिए ऐसा कहा।

'इस समय ? जब हम यहाँ तक पहुँच गये हैं ? हम लौट नहीं सकते। हाँ, यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम घोड़े पर बैठकर लौट जाओ।'

'मैं तो तुम्हारे साथ ही रहूँगी।'

'छिपा हुआ बाघ हम लोगों को देखता होगा। वह किधर से आक्रमण करेगा, यह कहना कठिन है। परन्तु तुम ज़रा भी डरना नहीं! मैं तुम्हारे पास ही हूँ....'

'मैं भला डरूँगी ? दो की जगह भले ही बारह बाघ आयें!' नन्दिनी ने कहा।

'हथियार तो जीवन में आज दिन पहली बार लिया और मिज़ाज इतना!' कहकर उदय ने नन्दिनी के कन्धे पर एक हलकी चपत लगायी। नन्दिनी के शरीर का स्पर्श होते ही उदय के हृदय में किसी नयी ऊर्मि का संचार हुआ। दोनों ने धीरे-धीरे चलकर झाड़ी को पार किया और वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ कुछ समय पहले वह व्याघ्र-युगल बैठा हुआ था। इस स्थान पर झाड़ी कुछ कम घनी थी। सामने पत्थरों का ऊँचा ढेर लगा हुआ था, और थोड़ी दूर पर पत्थर में से काटकर अपना मार्ग बनानेवाला एक झरना था। इस झरने में इस समय प्रवाह न था, परन्तु तीन-चार स्थानों में थोड़ा-थोड़ा पानी भरा हुआ था। भाला घूम सके इतनी खुली जगह यहाँ अवश्य थी। परन्तु बाघ किस दिशा से निकल कर आक्रमण करेगा, यह कहना कठिन था। बाघिन पाँव के नीचे की चट्टान से प्रकट हो जाये और सिर के ऊपर की चट्टान पर से बाघ झपटे, तब क्या करना होगा ? आत्म-रक्षा के साथ-ही-साथ नन्दिनी की भी रक्षा करनी थी! उदय को अनुभव हुआ कि वह एक क्षण के लिए भी सतर्कता का त्याग नहीं कर सकता।

आँख का काम जितना बढ़ता जाता है, उतनी ही उसकी शक्ति भी बढ़ती जाती है। नन्दिनी ने पहले भी जंगल देखे थे; एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते समय कभी-कभी उसे जंगलों से गुजरना पड़ा था। परन्तु शिकार करने के उद्देश्य से वह पहले कभी जंगल में नहीं गयी थी। तथापि

इस समय उसकी दो आँखों में चार आँखों जितनी शक्ति आ गयी थी। क्यों ?

कहीं अकेला उदय दो प्राणियों का सामना न कर सका, तो ?

उदय के नेत्रों में भी द्विगुणित तेज भर गया था। सामान्यतः शिकार में जब रूगा उसके साथ रहता था, तब वही चारों ओर का खयाल रखता था। आज तो वह भी साथ में न था। अन्य किसी शिकारी की भी सहायता न थी और शिकार के लिए एक प्राणी की जगह दो प्राणी सामने आ गये थे।

और साथ में अनुभवहीन नन्दिनी थी। एक प्राणी को रोकते समय यदि दूसरा नन्दिनी पर झपट पड़े तो ?

नन्दिनी और उदय भिन्न-भिन्न विचारों में लीन बहुत सावधानी से खड़े थे। नन्दिनी ने दृढ़ निश्चय किया था कि आज वह अपने हाथ के शस्त्र को निर्भीक होकर चलायेगी, भले ही पहले कभी न चलाया हो !

व्याघ्र-युगल का देर तक स्थिरता से आसरा देखते-देखते उदय और नन्दिनी थक गये। उनका कहीं भी पता न लगता था। आदमी की आँख उन्हें देख न सके यह सम्भव था; परन्तु एक सच्चा शिकारी भूल-कर भी यह विश्वास कर नहीं सकता कि व्याघ्र की हद में आये हुए आदमियों को बाघ न देखता हो

यकायक चट्टानों की एक दरार में उदय ने अपना भाला भोंका। शिकार के बाहर आने का आसरा न देख उसे छेड़कर बाहर निकालना ही इस समय उसे श्रेयस्कर लगा।

इतने ही में पास की दूसरी चट्टान के नीचे से क्रुद्ध बाघिन का विकराल मुख बाहर निकला। नन्दिनी ने बिजली की त्वरा से अपना भाला उस पर मारा। बाघिन ने अपना मस्तक गुफा के अन्दर खींच लिया, और भाला पृथ्वी पर गिर पड़ा। उदय के मुख पर मुस्कराहट दीख पड़ी ! नन्दिनी अपना भाला उठाने के लिए ज्योंही आगे बढ़ी,

उदय ने उसको रोककर कहा—बहुत पास न जाओ।

'इसको मैं ही मारूँगी। तुम हँसे क्यों?' नन्दिनी बोली।

'बाघिन को पूरी तरह बाहर तो निकलने देना था। यह तो हुआ ऐसा कि थोड़ी चोट खाकर वह छिप गयी और अब वह अधिक ज़ोर से हम लोगों पर आक्रमण करेगी।' उदय का वाक्य पूरा भी न हुआ था कि इतने में ऊपर की चट्टान पर से बिना कोई आवाज़ किये व्याघ्र यकायक इन दोनो पर कूद पड़ा। मानो साक्षात् काल सामने आया हो! उदय और नन्दिनी थोड़ा हट गये, और बाघ का सारा भार नन्दिनी की खुली हुई तलवार पर गिरा। तलवार की धार ने व्याघ्र के शरीर को चीर डाला।

परन्तु घायल व्याघ्र अधिक भयंकर बन जाता है। मरने के पहले वह शिकारी पर भीषण आक्रमण करता है। रुधिर से भरा हुआ व्याघ्र पुनः उछला; परन्तु उदय के भाले ने उसके वार को निष्फल कर दिया। वह पत्थर पर गिरा!

वहाँ से लुढ़ककर नीचे की चट्टान पर आया, और देखते-ही-देखते उस चट्टान के पीछे अदृश्य हो गया।

भाले के प्रहार को सहन करके व्याघ्र जब तक चट्टान पर गिरे, तब तक तो बाघिन भयंकर चीत्कार करती हुई गुफा के बाहर निकलकर नन्दिनी पर झपटी। व्याघ्र के आक्रमण से बाघिन का आक्रमण कहीं अधिक भयंकर था। उदय ने देखा कि नन्दिनी भयभीत है, अतः व्याघ्र को मारने के लिए उठाया हुआ अपना भाला उसने बाघिन के शरीर में धँसा दिया। नन्दिनी पूरी सतर्कता से दो पत्थरों के बीच में पड़ी हुई दरार में हट गयी, और इस प्रकार बाघिन के आक्रमण को विफल-कर दिया। परन्तु अब उसके और बाघिन के बीच ज़रा भी अन्तर न रहा, बाघिन ने तुरन्त अपना पंजा उठाया। यह पंजा नन्दिनी के शरीर पर पड़े इसके पहले ही उदय के भाले ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया; और उसने नन्दिनी को छोड़कर उदय पर आक्रमण

किया। उदय इस आक्रमण के लिए तैयार ही था। उसने पैंतरा बदला और चपलता से अपना भाला बाघिन के मुख में धँसा दिया। बाघिन मर्माहत होकर ज़ोर से पत्थर पर गिरी। मरते-मरते भी उसने अपना सारा बल बटोरकर उदय को झपट्टे से ज़ख्मी कर दिया होता, परन्तु इस बीच नन्दिनी ने अपनी तलवार से एक गहरा प्रहार उसके गले पर कर दिया। इस दूसरे प्रहार ने बाघिन का काम तमाम कर दिया और वह उछलने के बदले लुढ़ककर नीचे गिर पड़ी। गिरकर छटपटाते हुए, उसने अपने शरीर को खींचा और यकायक वह भी चट्टान के पीछे अदृश्य हो गयी।

दोनों शिकारियों ने आश्चर्य-सहित देखा कि उनके शिकार का पता न था। अभी कुछ समय पहले काल सरीखे दोनों प्राणियों ने उन पर आक्रमण किया था। अब वे कहाँ अदृश्य हो गये? इन किशोरावस्था के शिकारियों ने क्या वास्तव में ऐसे विकराल प्राणियों का शिकार किया था? इनको स्वयं शंका होने लगी। इनके वस्त्र पर रुधिर के छींटे पड़े हुए थे, जो इस बात को प्रमाणित करते थे कि स्वप्न-सदृश्य बीता हुआ प्रसंग बिलकुल सत्य था। तत्परता और बल से चलाये हुए शस्त्र अभी तक शिकारियों के रुधिर को उष्णता प्रदान कर रहे थे। यह सब क्या हो गया? और कितनी-सी देर में? आदमी और व्याघ्र के बीच में होनेवाले युद्ध में कितना समय लगा होगा?

'शाबाश! नन्दिनी! मैं तो डर रहा था कि तुम कहीं हिम्मत न हार बैठो, परन्तु तुमने तो केवल रक्षण ही नहीं किया, आक्रमण भी किया।' उदय ने कहा।

'तुम साथ में थे, फिर मुझे डर कैसा?' मानिनी ने अपना अभिमान छोड़ उदय को ही यश का भागी बनाया। नन्दिनी स्वयं भी न समझ सकी कि उसने इतनी प्रतिष्ठा उदय को क्यों दी?

'अब शिकार तो तुम्हारे ही साथ किया करूँगा।....रूपा की अब मुझे ज़रूरत नहीं!'

'परन्तु यह सब हुआ कैसे, यह मेरी समझ में नहीं आता।'

'तुम्हारा जन्म ही शिकारी के रूप में हुआ है।'

'और तुम? मैं तो समझती थी कि इतना छोटा, सुन्दर और कोमल उदय....' नन्दिनी ने वाक्य पूरा न किया। वह चुप हो गयी!

'अच्छा! अब हम लोग खूब सँभलकर चलें। तुम जानती हो कि घायल बाघ मरने का ढोंग करके पड़ा रहता है, और ज्योंही शिकारी उसके पास पहुँचता है, वह उछलकर उसका गला पकड़ लेता है!'

'ऐसी बात है? तब मैं आगे-आगे चलूँगी।'

'वाह, मैं तुम्हें कैसे आगे जाने दूँ? देखो, भाले को मज़बूती से पकड़े रखना। डर तो नहीं गयी हो न?'

'तुम कहो तो दिन-भर तुम्हारे साथ शिकार में घूमती फिरूँ।'

सतर्कतापूर्वक चट्टानों के नीचे उतरते हुए इस शिकारी-युगल ने एक अकल्पित दृश्य देखा। पास में एक बड़े पत्थर की आड़ में बाघ के शरीर पर अपना मस्तक डाले हुए बाघिन पड़ी थी!

दोनो मरे हुए थे! दोनो में से एक भी हिलता न था!

'नन्दिनी! व्याघ्र और सिंह-जैसे प्राणी मरने के समय जहाँ तक हो सकता है अपने शरीर को एकान्त में खींच ले जाते हैं!'

'क्या मारनेवाले के सामने मरते हुए उन्हें शर्म आती है?'

'कोई ऐसा भाव अवश्य रहता होगा! और यह भी देखो, मरने के समय मुख पर ज़रा भी दुःख की छाया है? दोनो कितने घायल हुए थे? परन्तु मुख पर कैसा राजसी ठाठ है!'

'इनके बदले हम ही मर गये होते, तो?' नन्दिनी ने पूछा।

'हम और तुम भी इसी प्रकार मरते-मरते सो गये होते।'

नन्दिनी ने भाले से व्याघ्र-युगल को हिलाया। परन्तु वे हिले नहीं। उनमें से प्राण चले गये थे। उनके शव-मात्र वहाँ पड़े थे। नन्दिनी ने उनका स्पर्श करके इस बात की पुष्टि करनी चाही। लेकिन उदय ने उसे रोक दिया।

'नन्दिनी ! इनकी देह को इसी तरह पड़ा रहने दो ।' उदय ने कहा।

'क्यों ? इनके चमड़े तो हम ले चलकर रखेंगे । एक चमड़ा तुम्हारा, और एक मेरा !'

'नहीं; आज से मेरा शिकार करना बन्द !'

'कारण ? बाघ को मारने के बाद इस प्रकार रोने-जैसे क्यों हो गये हो ?'

'मरने के समय भी जो अलग न रह सके, ऐसे प्राणी-युगल को हमने नाहक मारा ! मेरा और तुम्हारा इन्होंने क्या बिगाड़ा था ?'

'मुझे लगता है कि तुम जैन तो नहीं हो रहे हो अपने चाचा की तरह ! बाघ को मारने के बाद इस तरह सिर पर हाथ रखकर क्या बैठे हो ? यह उचित नहीं । उठकर बाघ की प्रदक्षिणा करो और गीत गाओ ।'

'मरे हुए इस प्रेमी बाघ युगल के पास बैठकर मैं कौन-सा गीत गाऊँ ?

नन्दिनी के उत्साह का पार न था । उसने तो बाघ के निकट जाकर हाथ-पैर के 'ठेके' के साथ गाना शुरू भी कर दिया :

कटि को सजाया बरछी कटार से,
भाले उछल रहे हाथ में,
कन्धों पर रखकर वज्र-सी ढाल को,
खेलने चले सब साथ में !
आये वनझुंड !
पर्वत प्रचंड !

एक पर एक पड़े हुए बाघ और बाघिन विजेताओं को टुकुर-टुकुर देख रहे थे । उनके मुख पर न दुःख था, न दैन्य; अपितु था विजय का गौरव । मृत्यु मुख को गौरव प्रदान करती है । मृत्यु में भी भव्यता आ सकती है । तो क्या मौत मानव को सौन्दर्य नहीं दे सकती ?

मुख को सौन्दर्य अथवा गौरव प्रदान किये बिना आनेवाली मृत्यु जीवन की निरर्थकता-निष्फलता की ही सूचना देती है । क्या ऐसा जीना संभव है कि जिसमें मौत जीवन की कलंगी-रूप बन जाये ? जीवन

के सदृश्य ही क्या मृत्यु सुन्दर नहीं बन सकती? मृत्यु क्या जीवन का एक जीवन्त और ज्वलन्त विभाग नहीं बन सकती—जैसे कली खिलकर पुष्प बन जाती है?

परन्तु मानव इस प्रकार ज वन के बीच में ही दखल देकर प्राणियों का संहार करे, यह कैसी कुरूपता? कलियों को, फूलों को डाली पर ही चुन लिया जाये तो वे विकसित कैसे हों? उदय का बस चले तो वह पृथ्वी पर की एक भी फूल-कली को तोड़ने न दे!

उदय को यह व्याघ्र-युगल अर्धविकसित टूटे हुए पुष्प-जैसा लगा। और उनको तोड़नेवाले उदय और उसकी सखी नन्दिनी?

नन्दिनी भी एक पुष्प-जैसी ही लग रही थी। मनुष्य भी क्या फूल ही की भाँति पैदा और विकसित नहीं होता? फूल को तोड़ना तो फूल के गले में फाँसी देना है!

नन्दिनी का बीच ही में कोई गला दबा दे तो?

'नन्दिनी! गाना बन्द करो, और यहाँ आकर बैठो।' उदय ने कहा। उदय के मस्तिष्क में अनेक अस्पष्ट विचार घूम रहे थे।

'क्यों? अब किस बात का डर है?' नन्दिनी बोली।

'समझ में नहीं आता; परन्तु डर अवश्य लगता है।'

'बाघ-बाघिन को मारनेवाला भला कभी डरता है?'

'हाँ! मुझे एक बात का भय लगने लगा है!'

'किस बात का?'

'हम दोनों की मृत्यु साथ आये, तब तो कोई हर्ज़ नहीं, बाघ-बाघिन की तरह साथ-साथ मरेंगे, परन्तु हम दोनों में से कोई पृथक् होकर मरे....'

'उदय-उदय! तुम क्या कह रहे हो, इसका खयाल है?'

'हाँ।'

'बिलकुल नहीं; तुमको कोई खयाल नहीं है! मैं और तुम साथ जीने के लिए पैदा ही नहीं हुए!'

'कैसे ?'

'तुम राजवंशी राजपूत, मैं एक गरीब मालिन की पुत्री ! आज से हम दोनो यह निश्चय करें कि इस प्रकार फिर कभी मिलेंगे नहीं। हम लोग अब बड़े हुए। मेरी मा तो बराबर मुझसे कहा करती है !'.

'तुम बड़ी हुई या नहीं, इसका मुझे पता नहीं। परन्तु तुम दिन-प्रतिदिन अधिक सुन्दर होती जाती हो, यह तो मैं देख रहा हूँ।'

'बस, बहुत हुआ अब ! घर लौटना है या यहीं ? हाय, हाय ! कितनी देर हो गयी ? अभी तो माला के लिए फूल तोड़ना बाक़ी है !'

'फूल तोड़ना बाक़ी रह गया, यह अच्छा ही हुआ ! तुम ज़रा बैठ जाओ; मैं तुमसे एक गोपनीय बात कहना चाहता हूँ।'

नन्दिनी उदय के पास आकर बैठ गयी। किशोरावस्था में से यौवन में अज्ञात रीति से प्रवेश करनेवाले इस युगल को अभी तक यौवन का इतना भान नहीं हुआ था कि उनको एक-दूसरे के निकट बैठते हुए संकोच होता, यद्यपि इस ज्ञान का प्रारम्भ हो गया था ! अथवा ऐसा तो न था कि आज ही उन्हें यौवन के आगमन की पूरी जानकारी हुई हो ! नन्दिनी उदय के पास बैठी, परन्तु उसने उदय का स्पर्श नहीं किया।

'कहो, कौन-सी बात कहना है ?'

'किसी से कहोगी तो नहीं ?'

'क्या तुमको लगता है कि मना करने पर भी मैं किसी से कह दूँगी।'

'नहीं। तब सुनो। सुनकर तुमको भी आश्चर्य होगा।'

'कोई कहानी तो नहीं कहने जा रहे ?'

'कहानी-जैसी ही विचित्र बात है; परन्तु कहानी-सदृश्य असत्य नहीं !'

'कहो, कहो; मैं अपने मन में ही रखूँगी।'

'तब सुनो। बुरा तो न लगेगा न ?'

'जो कुछ कहना हो, जल्दी से कह डालो।' नन्दिनी की उत्कण्ठा बढ़ी। उदय कौन-सी विचित्र बात कहेगा ? वह अप्रिय तो न लगेगी ?

'एक तो यह कि....नहीं, बाद में कहूँगा।'

'नहीं कहोगे ? ऐसी बात ?' कहती हुई नन्दिनी ने उदय का हाथ पकड़कर धमकाने का दिखावा किया।

'अच्छा, देखो! एक तो यह कि....कि,...तुम मुझे बहुत प्रिय लगती हो!' बहुत दिनों से जिन शब्दों को उदय कहना चाहता था, उनको उसने जल्दी से कह दिया।

'हट! मैं जानती थी कि तुम क्या कहना चाहते हो....!' कहकर नन्दिनी ने उदय के पकड़े हुए हाथ को छोड़ दिया। और वह अपना वाक्य पूरा करे इसके पहले ही उदय बोल उठा—दूसरे यह कि मेवाड़ का वास्तविक राणा मैं हूँ!

'क्या कहा ?' चौंककर नन्दिनी ने पूछा।

'राणा संग्रामसिंह का मैं पुत्र हूँ! चित्तौड़ का सच्चा उत्तराधिकारी!'

नन्दिनी ने अपने मस्तक पर हाथ रखा, और अपनी दृष्टि को बल-पूर्वक उदय की ओर से हटाकर दूर, सुदूर के पहाड़ और वनराजि पर डाला। उसकी दृष्टि बाह्य जगत् को देखती न थी; मन के भीतर प्रकट होनेवाले किसी प्रदेश को देख रही थी।

बहुत देर तक उदय और नन्दिनी चुप रहे। किसी के मुख से एक अक्षर भी न निकला। अन्त में मौन भंग करके उदय ने पूछा—बहुत विचार में पड़ गयी ?

'मेरे मन में एक ही विचार आ रहा है।'

'कौन-सा ?'

'वही जो तुम्हारे मन में उठा था।'

'मेरे मन में कौन-सा विचार आया था ?'

'हमें बिछुड़कर मरना होगा—जीते रहेंगे तब भी!'

'देखो....देखो....उधर से कुछ आदमी आ रहे हैं। हमारी ओर आते हैं; ये कौन हो सकते हैं ?'

नन्दिनी तलवार और भाला लेकर खड़ी हो गयी; परन्तु उदय पत्थर पर ही बैठा रह गया।



'तुम दोनों कौन हो ?' पत्थरों के बड़े ढेर के पीछे स्थित जंगल में से निकलकर आनेवाले सैनिकों में से एक ने आगे बढ़कर पूछा। आठ-दस अज्ञात आदमियों की यह टोली उदय और नन्दिनी के सामने आकर खड़ी हो गयी।

'पहले आप बतायें कि आप कौन हैं ? तब दूसरी बात !' नन्दिनी ने उत्तर दिया।

'देखती नहीं है छोकरी, कि हम लोग दस आदमी हैं, और तुम लोग दो !'

'एक बात मैं समझी। आप मेवाड़ के राजपूत तो नहीं लगते।'

'क्या ! क्या कहा तुमने ?'

'मुझे जो सच लगा, वह मैंने कहा। सच्चा राजपूत कभी दो के सामने दस की संख्या गिना नहीं सकता ! मेवाड़ी राजपूत तो कभी नहीं....'

'हम लोग राजपूत हैं....और मेवाड़ी राजपूत हैं....'

'मैं मानने को तैयार नहीं....खैर, आप लोग जो भी हों....' कहकर नन्दिनी ने अपने शस्त्र सँभाले, और पथरीले भाग से नीचे उतरनेवाले सैनिकों के ठीक सामने आकर खड़ी हो गयी।

नन्दिनी के निकट पहुँचे हुए टोली के नायक ने पास में पड़े हुए व्याघ्र के शव को देखकर आश्चर्य से पूछा—इन दो जानवरों को तुमने मारा ?

'हाँ; अभी ही मारकर हम बैठे हैं। हमारे हथियार फिर से ताज़े हो गये हैं !' नन्दिनी ने उत्तर दिया।

आश्चर्यचकित सैनिकों के मन संकुचित हुए।

'आपको कहाँ जाना है ?' नन्दिनी ने बात को बदल दिया।

'हम लोग कोमलमेर जा रहे हैं।'

'इस रास्ते कैसे आ गये ? अच्छा रास्ता तो दूसरी तरफ है।'

'दूर से हमने किसी को गाते हुए सुना'।' मन में हुआ कि अच्छा

माता अथवा उनकी कोई जोगिनी तो नहीं गा रही है; चलें, देखते चलें। इसलिए इस रास्ते निकल आये।'

'कोमलमेर में किसके यहाँ जायेंगे ?'

'आशा शाह के घर; उनके भतीजे को देखना है।'

'भतीजा ? उदय तो नहीं ?'

'हाँ-हाँ, उदयसिंह ही नाम है।'

'वह बैठा है उदयसिंह ? बाघ और बाघिन को मारकर अब उनके नाम रोने बैठा है !'

'क्या कहती हो ? वह रोता है ?'

'रोता न होगा, तो रोने की तैयारी में होगा।'

'किस कारण ?'

'उसके मन में यह आया कि हम लोग शिकार भी करें, और साथ ही बाघ-बाघिन को जीवित भी रखें।'

सैनिकों की टोली हँस पड़ी। नन्दिनी के साथ उनकी मैत्री बढ़ती जाती थी।

'तुम कौन हो ?' टोली के नायक ने पूछा।

'मरी हुई बाघिन !' नन्दिनी ने उत्तर दिया।

सैनिकों की टोली चौंक पड़ी। यह व्याघ्र-युगल और ये किशोर-किशोरी कौन हैं ? वे किसी दैवी शक्ति से तो बात नहीं कर रहे थे ? नायक ने ध्यान से नन्दिनी को देखा, और उसके बाद दूर बैठे हुए उदय की ओर दृष्टि घुमायी। उदय नीरस दृष्टि से इस टोली को देख रहा था।

'सच कहती हो ?'

'पूछो उदय से ! अरे उदय ! ज़रा यहाँ आओ। तुम्हारे यहाँ मेहमान आये हैं !' नन्दिनी ने उदय को बुलाया।

उदय उठा और मन्द गति से सैनिक टोली की ओर आया। उसके मुख पर कोमल सौन्दर्य और गहन विषाद—दोनों की छाया थी। टोली

के नायक ने उदय को सैनिक ढंग से नमस्कार किया। उदय ने भी सादर सबको नमस्कार किया।

'हम सब आपके दर्शन के लिए आये हैं।' नायक ने कहा।

'मेरे दर्शन ? आप भूल तो नहीं रहे हैं।' उदय ने उत्तर दिया।

'उदयसिंह आप ही हैं न !'

'हाँ जी।'

'आशा शाह के भतीजे भी आप ही हैं ?'

'हाँ, यद्यपि वह मुझे अपने पुत्र से भी अधिक मानते हैं।'

उस सैनिक के मुख पर आनन्द छा गया। उसने कहा—हम लोग आपको ही खोजते हुए आ रहे हैं, पन्ना के सूचनानुसार !'

'मुझे खोजते हुए ? पन्ना की कैसी सूचना ? वह तो भील आवास में गयी है !'

'हाँ जी ! यह बालिका कौन है ?'

'इसका नाम है नन्दिनी ! शिकार में मेरे साथ आयी है।'

नन्दिनी ने हँसकर उत्तर दिया—नहीं, नहीं। मेरा इससे कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

'तब तुम उदयसिंह के साथ क्यों आयी ?'

'मैं जानती थी कि बाघ-बाघिन का शिकार करने के बाद उदय दुःखी हो जायेगा।'

'परन्तु उसमें तुम्हारी क्या आवश्यकता ?'

'आपने दूर से एक गीत सुना था न ? वह मैं ही गा रही थी और गाकर उदय के मन को शान्त कर रही थी।'

'परन्तु शान्ति देनेवाली तुम कौन ?'

'मैंने कहा न कि मैं वही मरी हुई बाघिन हूँ।'

उदय ने वार्तालाप का क्रम अपनी ओर मोड़ते हुए कहा—इससे अधिक पूछ-ताछ न करें; यह बहुत विचित्र बालिका है।'

'ऐसी विचित्र बालिका को आप साथ लाये कैसे ?' नायक ने पूछा।

'विचित्र होते हुए भी बहुत अच्छी है, मुझे प्रिय लगती है, और इसका संग मुझे भी सुहाता है। परन्तु आपका परिचय ?' उदय ने पूछा।

'मेरा नाम वीरसिंह ! मैं जालौर का जागीरदार हूँ। दिल्ली जाने के लिए निकला था। मन में विचार आया कि अपने पुराने मित्र आशा शाह से मिलता चलूँ।'

'दिल्ली क्यों जा रहे हैं ?'

'मेवाड़ मुझे रखता नहीं, इसलिए।'

'चलिए मेरे साथ ! कोमलमेर में मैं रहता हूँ, आप भी वहाँ रह सकेंगे।'

उदय की बात सुनकर जालौर के जागीरदार वीरसिंह के मुख पर आनन्द छा गया।

बातचीत करते-करते उदय ने समझ लिया कि जालौर के सोनगढ़े राजपूतों की टोली आशा शाह के पास जा रही थी। मेवाड़ के राणा बनवीर और जालौर के वीरसिंह के बीच मनमुटाव हुआ, और राणा ने वीरसिंह का अपमान किया, यह बात सारे मेवाड़ में फैल गयी थी। उस समय के अपमानित राजपूतों के सामने तीन मार्ग थे—लूट मचाना, दिल्ली जाकर बादशाह की नौकरी कर लेना, अथवा अपमान का बदला लेने के लिए चित्तौड़ पर चढ़ाई करना ! संग्रामसिंह की मृत्यु के बाद, राजस्थान के अनेक राजपूतों ने लूट का धन्धा शुरू कर दिया था, और अनेक दिल्लीपति की नौकरी में लग गये थे। अभी तक चित्तौड़ की गद्दी पर आक्रमण करने का किसी को साहस न हुआ था। यह गद्दी बड़ी पूजनीय और पवित्र समझी जाती थी। जिस गद्दी को राजपूतों के आदर्श नृपति बाप्पा रावल, समरसिंह, भीमसिंह, हमीर, कुम्भा और संग्राम ने शोभित और पुनीत किया, वह क्षत्रियों के लिए सर्वदा वन्दनीय थी। उस गद्दी पर कैसा भी दुर्बल और दुष्ट राणा क्यों न आये, वह सर्वत्र सम्मान पाता था। यदि कोई राजपूत राणा द्वारा अपमानित होता, तो वह मुसलमान सुलतानों की नौकरी स्वीकार कर लेता, अथवा जंगलों

में जाकर लूट-मार मचाता, परन्तु चित्तौड़ पर आक्रमण कर उसको छिन्न-भिन्न करने का उसे विचार तक न आया; और यदि आया भी तो अपनी अयोग्यता तथा निर्बलता की बात सोच, ऐसे विचार को वह दूर कर देता। चित्तौड़ की गद्दी तो क्षत्रियों के लिए अभिमान का विषय थी, क्षात्रधर्म के आदर्श का प्रतीक थी! उसका तो सम्मान ही हो सकता था, विध्वंस नहीं।

अपमान की आग वीरसिंह को भीतर-ही-भीतर जला रही थी। अपमान एक राजपूत के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन जाता है। और राजपूत का कब, किस विषय में और कितनी मात्रा में अपमान हो सकता है, यह तो राजपूत का व्यक्तित्व ही निश्चित करता है।

दिल्ली में मुसलमानों का राज्य था, परन्तु वहाँ की सेना में राजपूतों को बराबर स्थान मिला करता था। कुछ समय तक वहाँ सेवा करने के बाद जिस राजपूत की इच्छा इस्लाम धर्म स्वीकार करने की होती, वह मुसलमान भी बन जाता, और दिल्ली के राजधर्म के साथ एकता का अनुभव करता। परन्तु दिल्ली के शासक ऐसे सैनिकों को मुसलमान बनाने का आग्रह नहीं करते थे। दिल्लीपति का हिन्दू सेनापति हेमू राजपूतों का स्वागत-सत्कार करता और उनको अच्छे पदों पर भी आसीन करता था। संयोग से मुग़लों के विरुद्ध युद्ध करते हुए वह मारा गया, और इस समय दिल्ली की गद्दी पर एक तेजस्वी बालक बैठा हुआ था। इस बालक के पिता और दादा दोनो दिल्ली के सुलतान रह चुके थे। बीच में परिस्थिति की विषमता के कारण हुमायूँ को गद्दी छोड़कर भागना पड़ा था। कुछ वर्षों तक दिल्ली के राजमंच से वह दूर रहा। इस बीच दिल्ली की सत्ता अच्छे-बुरे अनेक मुसलमान शासकों के हाथ में रही। उपयुक्त समय मिलते ही हुमायूँ फिर आया। परन्तु दुर्भाग्य से दिल्ली में प्रवेश करने के पहले ही वह पंचत्व को प्राप्त हुआ।

हुमायूँ की महेच्छा को एक छोटे से बालक ने पूरा किया। यही बालक महान् अकबर के नाम से प्रख्यात हुआ। अकबर राजपूतों का

प्रशंसक था। वीरसिंह ने सोचा कि वह मेवाड़ छोड़कर दिल्ली क्यों न चला जाये?

भीलों के आवास में से जाते हुए वह रत्नसिंह के आतिथ्य का अनादर कर नहीं सकता था। रत्नसिंह के घर उसे रुकना ही पड़ा। बात-चीत के समय रत्नसिंह ने उसे सलाह दी—दिल्ली न जाकर आप हम लोगों के किशोर महाराणा की सहायता क्यों नहीं करते?

'बनवीर को आप किशोर कहते हैं?'

'नहीं, उसे नहीं। संग्रामसिंह के पुत्र उदयसिंह को!'

'उसे तो बनवीर ने मार डाला! तभी से तो बनवीर के साथ मेरा झगड़ा हो गया है।'

'उदयसिंह जीते-जागते हैं। विश्वास न हो तो जाकर देख आयें। उसके बाद हम लोग मिलकर वास्तविक महाराणा को गद्दी पर बिठायेंगे।'

रत्नसिंह को यह परिस्थिति अनुकूल दिखाई दी। उसने देखा कि बलबीर को हटाने, और उदय को प्रकट कर राणा संग्रामसिंह के नाम से राजपूतों में पुनः एकता स्थापित कर दिल्ली के इस्लामी भय को दूर करने का उपयुक्त समय आ गया है। अपने नये कर्त्तव्य का प्रारम्भ उसने वीरसिंह के अपमान की ज्वाला को नियन्त्रित करके किया।

वीरसिंह को विश्वास दिलाने के लिए उन्होंने पन्ना और रूपा को भीलवाड़े बुलाया। वीरसिंह को अब विश्वास हो गया कि उदयसिंह जीवित है। बनवीर के साथ होनेवाले झगड़े ने उसके विचार-परिवर्तन में सहायता दी, और दिल्ली न जाकर उसने उदयसिंह को देखने का तथा आशा शाह से मिलकर बनवीर के विरुद्ध मोरचा खड़ा करने का निश्चय किया।

जिसे देखने के लिए वह निकला था, वह कोमलमेर की सीमा पर ही मिल गया; यद्यपि बड़े ही विचित्र संयोगों में! तथापि संयोग की विचित्रता उसे अति प्रिय लगी।

जंगल के बाहर वीरसिंह की टोली के घोड़े उनके सैनिकों की रक्षा

में खड़े थे। उदय और नन्दिनी के अश्व भी एक वृक्ष के नीचे बँधे हुए थे। नन्दिनी यकायक दौड़ गयी और बिना किसी की सहायता के अपने घोड़े पर बैठकर अकेली ही चली गयी। उदय की समझ में न आया कि वह इस प्रकार अकेली क्यों चली गयी! उदयसिंह, वीरसिंह और उनकी टोली जब कोमलमेर पहुँची, तब दो पहर का समय व्यतीत हो चुका था।

कोमलमेर में उदय की चारों ओर खोज हो रही थी। आशा शाह के तो होश उड़ गये थे। उसे केवल इतने ही समाचार मिले कि दो घोड़ों को लेकर उदय दुर्ग के बाहर चला गया था। चारों ओर आदमी दौड़ाये गये। परन्तु गहन जंगल के भीतर घुस जाने के कारण उदय का कहीं पता न लगा। मैना की पुत्री नन्दिनी का भी पता न था। उदय और नन्दिनी को कभी-कभी साथ खेलते हुए देखनेवाले नौकरों ने मैना के घर पर भी खोज की। नन्दिनी अपने घर पर भी न थी।

दो पहर बीत जाने के बाद पहले नन्दिनी गाँव में आयी। बहुत पूछ-ताछ करने पर भी उसने कोई उत्तर नहीं दिया। घर के अन्दर जाने के बाद उसके मन और शरीर ने एक अन्धकारमय आवरण ओढ़ लिया। उसे इच्छा हुई कि वह न किसी से बोले, न किसी से मिले। अपनी माता को भी उसने ठीक से उत्तर न दिये, और चुपचाप जाकर सो गयी।

थोड़ी ही देर में जालौर की सैनिक टुकड़ी के साथ उदयसिंह को आता हुआ देखकर आशा शाह के जी-में-जी आया। मेवाड़ के सिंहासन का उत्तराधिकारी जब तक बड़ा होकर गद्दी पर न बैठे, तब तक उसे गुप्त रखने की ज़िम्मेदारी आशा शाह ने अपने ऊपर ली थी। इस कर्त्तव्य का पूरा प्रतिपालन हो, इस बात की चिन्ता उनको सर्वदा रहा करती थी। उन्होंने उदय की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर रखा था। आज आशा शाह को लगा कि यह तेजस्वी किशोर अपने रक्षा-व्यूह को पार करके किसी साहस-कार्य को करने के लिए निकल गया है। परन्तु यदि यह साहस सफल न हुआ, तो? उदय को अपने पास रखकर उसने मेवाड़ की प्रजा और मेवाड़ के राजवंश के प्रति एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर

ले ली थी। रूपा नायक और पन्ना दोनो आशा शाह के भरोसे उदय को छोड़कर भीलवाड़े गये थे।

आशा शाह स्वयं उदय को खोजने जाने की तैयारी कर रहा था। इतने में उदय ने ही आकर जालौर के वीरसिंह के आने के समाचार दिये। अतिथि अर्थात् देव! उसका सत्कार आवश्यक था। आशा शाह और वीरसिंह एक-दूसरे से गले मिले, भोजन किया, और इसके बाद बातों में लग गये।

'मैंने तो सुना था कि आप दिल्ली जा रहे हैं।' आशा शाह ने पूछा।

'राणा बनवीर के राज्य में और दूसरा काम क्या हो सकता है!' वीरसिंह ने उत्तर दिया।

'गद्दी पर बैठने के बाद बनवीर बिलकुल ही बदल गया!'

'आपको क्या? आपने तो जैन बनकर और धर्म-ध्यान में पड़कर झगड़े से छुट्टी पा ली। परन्तु हमें तो जागीर बचाना है, मेवाड़ की गद्दी बचाना है और स्वमान बचाना है! मुझे अपमानित करने का निश्चय कर लिया है। दिल्ली न जाऊँ, तो और कहाँ जाऊँ?'

'थोड़ा धीरज रखिए। अरे उदय! जाकर देखो कि वीरसिंहजी के रहने की सब व्यवस्था हो गयी है न?' उस खण्ड में से बाहर जानेवाले उदय को देखकर आशा शाह ने कहा।

'हाँ,' कहकर बाहर जानेवाले उदय की ओर दृष्टि डालते हुए वीरसिंह ने पूछा, 'अविनाश! यह उदय कौन है?'

'क्यों? आपको खबर नहीं? मेरा भतीजा....'

'सच कहना।'

'क्या अर्थ?'

'बाघ और बाघिन दोनो का शिकार करके बैठे हुए इस किशोर को देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।'

'इसमें आश्चर्य क्या? राजपूत बालक के लिए यह कोई नयी बात तो नहीं। इस उम्र में हम और आप दोनो शिकार किया करते थे।'

'परन्तु शिकार में हम लोग अकेले नहीं जाते थे।'

'क्या उदय अकेला ही था?'

'हाँ, साथ में एक बड़ी ही खिलान्दड़ी लड़की थी। मैं क्या बताऊँ! बाघ-बाघिन को मारकर कितनी निश्चिन्तता से यह बैठा था! मुझे तो कोई सच्चा राजवंशी लगा।'

'राजपूत का अर्थ ही राजवंशी होता है।'

'यह बात सच है। परन्तु इतनी छोटी उम्र में बाघ-बाघिन दोनों को एक साथ मारने का साहस राणा सांगा को छोड़कर और किसी में सुना न था।'

'आपको एक गुप्त परन्तु सत्य बात कहूँ?'

'यही न कि उदय राणा साँगा का कुमार है?'

'हाँ।' आशा शाह ने कहा।

'रत्नसिंह, पन्ना, रूपा नायक और अन्त में आशा शाह जिस बात को कहें वह कदापि झूठ नहीं हो सकती।'

'यदि कोई सन्देह हो, तो वह भी दूर किया जा सकता है।'

'मुझे कोई सन्देह नहीं। मैंने जिस बात को अपनी आँखों देखा, वह आपके कथन को पुष्ट करती है। राणा साँगा के कुँवर के बिना ऐसे विकराल बाघ-बाघिन का शिकार इस उम्र में दूसरा कोई कर नहीं सकता।'

'यह तो मैं भी जानता हूँ कि मेरी बात में आपका पूर्ण विश्वास है। परन्तु यह बता देने में कोई हर्ज नही है कि इस बात को देवल के सिंहराव और डूँगरपुर के यशकर्ण भी जानते हैं।' आशा शाह ने और भी प्रमाण उपस्थित किया।

'तब हम, आप और ये लोग चुपचाप क्यों बैठे रहें। निकालिए तलवार और जयघोष कीजिए महाराणा उदयसिंह का!'

'रुधिर न बहाना पड़े, और हमारा कार्य हो जाये, ऐसा मार्ग मैं खोज रहा हूँ।' आशा शाह ने कहा।

'यह कभी हुआ है, अविनाश सेन! रुधिर से आप भागते क्यों है?'

'इसलिए कि अब मैं आशा शाह बन गया हूँ।'

'क्षमा करना; आपको क्रोध दिला रहा हूँ....'

'क्रोध भी मेरा वर्षों पूर्व चला गया। देर इसी लिए कर रहा हूँ कि मेवाड़ की घायल भूमि को अधिक ज़ख्मी बनाना नहीं चाहता।'

'मेवाड़ की स्थापना ही रुधिर से हुई है! आप क्या करेंगे? आप देखते ही हैं कि मेवाड़ रुधिर की क्यारियों में ही फलता-फूलता है।'

'रुधिर की क्यारियों की जगह मैं कुंकुम की क्यारियाँ बनाना चाहता हूँ।'

'वह जब सम्भव हो जाये तब मुझे बुलाकर बताना! आज मुझे पता लगा कि उदयसिंह चित्तौड़ की गद्दी का सच्चा उत्तराधिकारी है। अब तो जब तक उसे गद्दी न मिले, तब तक यह कटार म्यान में जायेगी नहीं!' कहते हुए वीरसिंह ने अपनी कटार म्यान में से बाहर निकाली।

'बनवीर बहुतों का अप्रिय बन गया है, परन्तु उसके विरुद्ध कटार खींचनेवाले तो आप अकेले ही निकले! एक कटार क्या कर सकती है?' आशा शाह ने कहा।

'दूसरी आपकी कटार है।'

'उसमें तो जंग लग गया है।'

'रत्नसिंह और उसके भील योद्धा बड़े काम के हैं।'

'परन्तु कितने राजपूत हमारा साथ देंगे? एक आप और दूसरा मैं....'

'प्रायः सभी; एक मार्ग हम लोग ग्रहण करें, तो।' विचार करके वीरसिंह ने कहा।

'उदय को चित्तौड़ की गद्दी मिले, ऐसे किसी भी मार्ग का विचार किया जा सकता है। सच्चा मार्ग वही जो उसे गद्दी पर ले जाये।'

'मैं सच्चे मार्ग की ही बात करता हूँ। एक सच्चा मार्ग शस्त्र का, और दूसरा सम्बन्ध का!' वीरसिंह ने कहा।

'अर्थात्?'

'अपनी पुत्री की सगाई मैं उदय के साथ करता हूँ। इससे सच्चे सम्बन्ध की स्थापना होगी और दूसरे मेरा अनुकरण करेंगे। पसन्द आयी मेरी बात ?'

आशा शाह के मुख पर प्रसन्नता की झलक दिखाई दी। बनवीर के प्रति सारे मेवाड़ में एक प्रकार का विरोध व्याप्त हो गया था। इस विरोध का प्रतीक-रूप वीरसिंह अपनी पुत्री का विवाह उदय के साथ करे, इससे अच्छा और क्या हो सकता था ? इस एक सम्बन्ध में से अनेक सम्बन्धों का प्रादुर्भाव होगा !

जालौर के राणा वीरसिंह अपने तेज और वीरत्व के लिए सारे मेवाड़ में प्रसिद्ध थे। मेवाड़ छोड़ दिल्ली की ओर आकर्षित होनेवाली उनकी शक्ति पुनः मेवाड़ में ही केन्द्रित रहे, यह उदय के लिए बड़े ही सौभाग्य की बात थी। इस पर भी वीरसिंह की पुत्री का विवाह उदय के साथ हो, यह इस बात का द्योतक था कि परिस्थिति उदय के अनुकूल हो रही है, और चित्तौड़ के महाराणा बनने में अब अधिक विलम्ब न होगा।

बनवीर युद्ध किये बिना रहेगा नहीं। आशा शाह को युद्ध का भय न था। वह स्वयं अनेक युद्धों में भाग ले चुका था। परन्तु इधर कुछ समय से उसे हत्या के प्रति विराग उत्पन्न हो गया था।

'तब तो उदय को अब महाराणा के रूप में प्रकट करना ही होगा।' आशा शाह ने कहा।

'कहिए तो आज ही मैं उदयसिंह के नाम की डुग्गी बजवा दूँ !' वीरसिंह को देर करना अभीष्ट न लगा।

'विवाह कब करना चाहते हैं ?'

'जितना जल्दी हो सके ! मेरा सारा कुटुम्ब मेरे पीछे आ रहा है। रत्नसिंह ने उसे भीलवाड़े में रोक रखा है।'

'सवार भेजकर मैं सब को यहीं बुला लेता हूँ।'

'और उदय के विवाह का मुहूर्त भी दिखा लेना चाहिए।'

'पन्ना और रूपा नायक को भी साथ ही में बुला लें।'

'अवश्य ! रत्नसिंह तथा अन्य मंडलेश्वरों के पास भी हम यही आमंत्रण-पत्र क्यों न भेजें कि वे सब मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के लग्नोत्सव में पधारें !'

'बनवीर को भी निमंत्रण दें ! इस प्रकार लोगों को सच्ची बात मालूम हो जायेगी ।'

'और इसमें से यदि शोणित की धाराएँ बहीं, तो उनको हम लोग कुंकुम की क्यारियाँ मान लेंगे ।'

आशा शाह ने अपनी सम्मति प्रदर्शित की, यद्यपि शोणित और कुंकुम की बात ने उसके मन में अनेक विचार उत्पन्न कर दिये थे ।

परन्तु इन विचारों के कारण योजना की गति में किसी प्रकार की शिथिलता न आयी। देखते-ही-देखते, कोमलमेर का दुर्ग राजपूत तथा भील सरदारों के आवागमन का केन्द्र बन गया ।

सारे मेवाड़ में यह बात फैल गयी कि मेवाड़ के वास्तविक महाराणा उदयसिंह का लग्नोत्सव शीघ्र ही कोमलमेर में होनेवाला है ।

भीलवाड़े से लौटकर जब पन्ना कोमलमेर आयी, तब उसे उदय के विवाह के समाचार मिले । सुनते ही हर्षाश्रु उसके नेत्रों में उमड़ आये । इन अश्रुओं को उसने अपनी आँखों में ही रोक लिया । जिस क्षण उदय चित्तौड़ की गद्दी पर बैठेगा, उस धन्य क्षण के बाद ही पन्ना के हृदय में हर्ष या शोक को स्थान मिल सकता है । पन्ना के मुख की एक रेखा कुछ उग्र हो गयी । हर्ष को दबा देने से मुख के व्यापार में कुछ अनैसर्गिकता तो अवश्य आ जाती है । पन्ना तो वर्षों से हर्ष और शोक दोनों को दबाती आयी थी। पन्ना के सुन्दर मुख पर कटुता के चिन्ह दीख पड़ने लगे थे ।

५

नन्दिनी अपने छोटे-से घर के चबूतरे पर बैठी हुई माला पिरो रही थी —अथवा माला पिरोने का दिखावा कर रही थी । घर के सामने सीमांकन करनेवाली झाड़ी उसे अन्य मकानों से पृथक् करती थी, और जो

थोड़ी खुली हुई जमीन थी उसमें एक छोटा-सा बगीचा लगाया हुआ था।

संध्या का समय होने आया था, तथापि माला पिरोने का काम चल ही रहा था। कभी-कभी तो यह कार्य रात्रि में भी हुआ करता था।

मेवाड़ के कितने ही मांडलिक, सेनापति और जागीरदार कोमलमेर आते और उदयसिंह को भेंट देने के लिए यहाँ से मालाएँ ले जाते। नन्दिनी अब फूल लेने के लिए सरकारी बगीचे में जाती न थी; मैना फूल ले आती थी, और नन्दिनी बैठी-बैठी मालाएँ बनाया करती थी। पानी भरने के लिए नन्दिनी कभी-कभी बाहर निकलती थी, परन्तु वह भी बहुत सवेरे अथवा देर से सायंकाल के समय। उदय के साथ शिकार करने के बाद वह सबको छोड़कर पहले चली आयी थी, और घर में घुसकर सो गयी थी। माता की नाराज़गी का उसने एक ही वाक्य में उत्तर दिया था—अब मैं घर के बाहर कभी पैर न रखूँगी।

और इस कथन का अधिकांश उसने पालन भी किया। अनिवार्य संयोगों में ही वह बाहर निकलती; वह भी इस प्रकार कि मार्ग में किसी आदमी से भेंट न हो।

परन्तु इस व्यवहार-परिवर्तन के साथ-साथ उसके खेल-कूद वार्तालाप और गाने अदृश्य हो गये। उसकी चंचलता चली गयी। दर्पण में देखा तो उसे स्पष्ट रूप से लगा कि उसका शरीर दौड़ते समय पूर्ववत सुन्दर प्रतीत न होगा। शिकार में ही उसकी समझ में आ गया था कि उदय के साथ की उसकी मैत्री अच्छी नहीं। फिर तो क्षण-क्षण में जब वह घर के बाहर नज़र डालती, तब उसे प्रतीत होता कि उसके और उदय के बीच एक गहरा सागर—महासागर—यकायक लहराने लगा।

इस सागर को तैरकर पार करना असम्भव था! उसका उल्लंघन भी न हो सकता था। सागर के पार खड़ी हुई एक मूर्ति क्षण-क्षण जीवन्त बन रही थी। जितनी ही वह जीवन्त बनती जाती थी, उतनी ही वह अस्पृश्य होती जाती थी। क्यों? क्या अपने और इस मूर्ति के बीच में लहरानेवाले महासागर के पार नन्दिनी का हाथ पहुँच न सकता था?

हाथ न पहुँच सके; परन्तु हृदय तो पहुँच जाता था....सात-सात समुद्रों के पार ! हृदय-जितना ही विस्तार शरीर के अन्य भाग कर सकते, तो कितना अच्छा होता ? हृदय व्यापक और शेष अवयव संकुचित-सीमित कार्यक्षमतावाले । इनका समन्वय कैसे हो ?

आखिर नन्दिनी ने निश्चय किया कि उदय-सम्बन्धी विचारों को अपने हृदय में आने ही न देगी ! निश्चय की दृढ़ता नन्दिनी का जन्म-सिद्ध गुण था । लोग उसे हठी और दुराग्रही कहा करते थे । उदय को अब मैं याद न करूँगी, उसने निश्चय किया, और इस निश्चय को वह दिन-प्रतिदिन दृढ़ करती चली गयी । उदय का विचार तक मन में न आये, इस बात का उसने भगीरथ प्रयत्न करना शुरू किया ।

परन्तु इतना करने पर भी उदय तो उसके कल्पना-प्रदेश में ही रहता !

जब वह पानी भरने जलाशय पर जाती, तब उदय की याद आने का कोई कारण न होता । परन्तु वहाँ भी उसे उदय दीख पड़ता । पानी की लहरों पर उदय तैरता हुआ नज़र आता । हाथ पैर या घड़े को पानी में डुबाते ही जो भँवरें उठतीं, उनमें भी उदयर चक्क लगाता हुआ दीख पड़ता । उदय की याद उसे छोड़ती क्यों न थी ?

पानी भरकर लौटते समय कभी वह अकेली ही रहती, और कभी साथ में कोई सहेली होती । यदि सहेली साथ होती, तो वह नन्दिनी से अवश्य उदय-सम्बन्धी बातें करती ।

'वह उदय, जिसने गुलेल से तुम्हारा घड़ा फोड़ दिया था, आज-कल क्यों नहीं दीख पड़ता ?'

'मुझे क्या पता ?' नन्दिनी उत्तर देती ।

'अरे, अब तो वह मेवाड़ का महाराणा बन गया है....अब वह क्यों दीख पड़ेगा ?'

'हो सकता है ! हम लोगों को क्या मतलब ?'

'हम लोगों ने तो सोचा था कि उदय के साथ तुम्हारा....'

'उदय ! उदय ! उदय ! जब देखो तब यही बात ! बात करने को कोई दूसरा विषय नहीं मिलता ? उदय की बात करनी हो, तो तुम मेरे साथ पानी भरने न आओ।' नन्दिनी झिड़की के साथ उत्तर देती, और उदय की बात न करने का आग्रह करती।

सहेली को तो वह रोकती, परन्तु अपनी आँखों के सामने वह उदय की मूर्ति को ही खड़ा पाती।

सारा दिन घर में ही बैठ रहने से उसे एक प्रकार की थकावट का अनुभव होता, और वह सोने का प्रयत्न करती। परन्तु उसे नींद न आती। नींद न आने से उसे व्याकुलता होती, जिसे दूर करने के लिए वह उठकर घूमने लगती। कभी-कभी खिड़की में से बाहर नज़र डालकर वह तारे गिनती। गिनते-गिनते दो तारों में उसे उदय की पलकें दीख पड़तीं। इन पलकों के बाद तो धीरे-धीरे उदय की सारी मूर्ति तारक-मण्डल में निकल आती। रात्रि के तारों-भरे आकाश में सिंह, कर्क, कन्या और तुला आदि राशियाँ दीख पड़ती हैं, यह नन्दिनी जानती थी। उसने उन्हें देखा भी था। परन्तु उनके बीच यह उदय नाम की नयी राशि कैसी ? इस उलझन को सुलझाने के लिए वह जितना अधिक विचार करती, उतनी ही यह उलझन और भी घनी हो जाती। उसे ऐसा आभास होता मानो तारे हँस रहे हों, और उदय की एक मूर्ति के स्थान पर अनेक मूर्तियों का निर्माण करते जाते हों।

'ऐसे खिलाड़ी तारों को तो गठड़ी में बाँधकर रख देना चाहिए।' वह बोल उठती, और खिड़की के पास से हट जाती।

किसी रात यदि नींद आ गयी, तो स्वप्न में भी उदय के दर्शन होते। और स्वप्न में दीख पड़नेवाले पागलपन का तो पूछना ही क्या ?

स्वप्न में एक बार उसने देखा कि उदय उसे राजरानी का मुकुट पहिना रहा है ! नन्दिनी को मुकुट का मोह न था। मुकुट पहिनाने का प्रयत्न करनेवाले उदय से उसने कहा—बहुत-सी रानियों के सिर पर पहिनाया हुआ मुकुट मुझे नहीं चाहिए।

'मैं तुम्हें अपनी सम्मानित रानी बनाऊँगा ! पटरानी बनाऊँगा !' उदय ने विनती की।

'हटो ! तुम्हारा दिया हुआ राजमुकुट मेरे काम का नहीं।' कहकर नन्दिनी ने उदय के हाथ को झटका दिया, और मुकुट दूर जा गिरा।

नन्दिनी की नींद खुल गयी, और जागृत होकर वह स्वप्न के दृश्यों पर विचार करने लगी।

एक बार उसने स्वप्न में देखा कि उदय अपना राजमुकुट उतार-कर फेंक रहा है !

'यह क्या ? मुकुट क्यों फेंक रहे हो ?' नन्दिनी ने स्वप्न में ही उदय से पूछा।

'तुम्हारे लिए !' उदय ने उत्तर दिया।

'अरे ! इस मूर्खता से क्या लाभ ?'

'राजगद्दी से अधिक मैं तुम्हें चाहता हूँ।'

'झूठे ! तुम अपना मुकुट फेंक भी दोगे, तब भी मैं तुम्हारे पास न आऊँगी।'

'तो मैं तुम्हारे पास आऊँगा।'

'आओ देखें !' कहकर उदय के हाथ-पर-हाथ रखकर नन्दिनी दौड़ गयी। कुछ दूर जाकर उसने घूमकर देखा तो उदय अदृश्य हो गया था।

'उदय ! उदय !' उसने स्वप्न में ही उदय को पुकारा। उदय के अदृश्य होने की व्यथा ने उसे जगा दिया, और वह चौंककर उठ बैठी। उसके हृदय में धड़कन हो रही थी। यह धड़कन क्यों ? यह समझने का प्रयत्न करने में उसकी व्याकुलता और भी बढ़ गयी।

दिन में भी उदय ! रात्रि में भी उदय ! उदय को भूलने का दृढ़ निश्चय करने के बाद भी ?

उसने एक हाथ की उँगलियों को दूसरे हाथ की उँगलियों में पिरोकर दबाया, और उदय को भूलने के निश्चय को और दृढ़ किया।

'इतने ज़ोर से यदि उदय की उँगलियाँ कभी दबें, तो उन्हें कितना कष्ट हो ?' तुरन्त नन्दिनी के मन में विचार आया।

फिर उदय का ही विचार !

दाँत पीसकर उसने सामने खड़े हुए उदय को धक्का मारा।

दिन में भी उसे इस प्रकार के स्वप्न आया करते थे।

धक्का मारते ही उसे ऐसा आभास हुआ मानो उदय जल में जा गिरा ! इस जलराशि ने बढ़ते-बढ़ते महासागर का रूप ले लिया ! और उदय उस महासागर के पार पहुँचा हुआ दीख पड़ा। उदय चला जा रहा था। उसे रोके कैसे ? वह तो गया। सामने किनारे पहुँचा। अब आगे बढ़ रहा है। महासागर को तैरकर सामने पार पहुँचे उदय को, चले जानेवाले उदय को रोके कैसे ?

नन्दिनी और उदय के बीच गर्जन-तर्जन करके उछलनेवाले महासागर को तैरकर पार करने की शक्ति नन्दिनी के शरीर में न थी !

कठोर निश्चय से नन्दिनी विवशता के स्तर पर उतर आती और उदय की मूर्ति को अश्रुसागर में विलीन करने लगती।

घर के काम में भी उसका चित्त न लगता। काम करते-करते वह विचारमग्न होकर निष्क्रिय हो जाती। पुत्री की ऐसी विचित्रता देखकर एक बार मैना ने पूछा—चुपचाप क्यों बैठी हो ?

'मैं बैठी हूँ ! नहीं, नहीं ! देखो....हाँ....बरतन मलना रह गया.... मैं अभी मले डालती हूँ....'

कभी-कभी नन्दिनी को समय का भान भी न रहता।

'देखो, नन्दिनी ! इस तरह बावरी बन जाओगी, तो तुम्हारा क्या होगा ?' माता ने पूछा।

'मैं बावरी बन गयी हूँ ? किसने कहा ?' नन्दिनी ने उत्तर में प्रश्न किया।

'कहेगा कौन ? मैं तो तुम्हारी हालत स्वयं देख रही हूँ।'

'कैसी हालत ?'

'यही कि सूरज निकलने के पहले से फूल लेकर बैठी हो, और अभी दस फूल भी तुमने पिरोये नहीं !'

'मुझे खयाल न रहा ...लोगों का आना-जाना देख रही थी; अच्छा देखो, पलक मारते मैं माला तैयार किये देती हूँ ।'

कहकर नन्दिनी ने जल्दी से माला पिरोना शुरू किया। परन्तु क्षण-दो क्षण में पुनः नन्दिनी के हाथ रुक गये ।

आज मैना ने दो बार नन्दिनी को रोका, परन्तु नन्दिनी का हाथ चला नहीं । माला पिरोना नन्दिनी की अँगुलियों के लिए एक खेल था । परन्तु इस कार्य के लिए हाथों को वेग प्रदान करने की वृत्ति उसके हृदय में थी नहीं । वह तो हाथों में फूल और धागा लेकर चुपचाप बैठी हुई मेवाड़ की राजधानी की ओर प्रस्थान करनेवाले उदय का चित्र देखती रही ! कितने आदमी उसके साथ थे ! कितने शस्त्रधारी अश्वारोही ! चित्तौड़ के निकट भयंकर युद्ध होगा ही ! बनवीर सरलता से महाराणा-पद उदय को क्यों देने लगा ? वह भी एक महान् योद्धा था । उसे भी बहुत-से मांडलिकों का समर्थन प्राप्त था । उदय युद्ध कर सकेगा ? व्याघ्र को मारकर जिसके हृदय ने दुःख का अनुभव किया, वह मनुष्यों को कैसे मार सकेगा, यद्यपि शस्त्र चलाने की उसकी कला अद्भुत थी ! सुकुमार होने के साथ-साथ वह चपल भी कितना था ! और बल भी कितना था उसकी छोटी-सी देह में !

तब क्या नन्दिनी में कम चपलता थी ? मृदु होते हुए भी उसके शरीर में कितनी शक्ति थी ?

परन्तु इस बात से नन्दिनी का क्या सम्बन्ध ? उदय तो चला मेवाड़ की गद्दी पर आसीन होने के लिए ! नन्दिनी के भाग्य में तो रहा कोमलमेर के खंडहरों में भटकना-मात्र—अकेले ही। उदय तो यह चला चित्तौड़ की ओर ! नन्दिनी ने उदय की ओर न देखने का निश्चय किया था । परन्तु यह क्या ? उसकी आँखें उदय की ओर से हटती ही न थीं ? अन्तिम बार उसे देख लेने में हर्ज ही क्या था ? आँखें उसकी मूर्ति को अपने

में समा लें....बन्द कर लें....तब वह भले ही चला जाये,!

परन्तु किसी सेना के साथ जाता हुआ, वह नज़र नहीं आया। न उसने शस्त्र धारण किये थे, और न वह घोड़े पर बैठा था! मालूम ऐसा होता था कि वह नन्दिनी की ओर आ रहा है। नन्दिनी के पास वह क्यों आने लगा? भूली हुई मैत्री का स्मरण आने से अन्तिम बार मिलने तो नहीं आ रहा था?

नन्दिनी ने आँखें मलकर देखा। ऐसे दिवास्वप्न तो वह बराबर देखा करती थी। वह ऐसे स्वप्न देखती ही न थी, उनमें लीन हो जाती थी, और उन्हें सत्य मानकर उनसे अत्यधिक आनन्द उठाती थी! उसका बस चले तो वह इस प्रकार के दिवास्वप्न की दुनिया में ही रहे, कभी जागे नहीं! परन्तु व्यक्ति का स्वप्न और जगत् का सत्य सर्वदा एक-दूसरे से टकराते ही रहते हैं। इस संघर्ष में मग्न होता है व्यक्ति का दिवा-स्वप्न; जगत् का सत्य तो जीता-जागता रहता है! ऐसे दिवास्वप्न से जब जाग्रत होना होता, तब नन्दिनी आँखों को मलकर बैठ जाती। उसका स्वप्न अदृश्य हो जाता, और जाग्रत जगत् के साथ पुनः सम्पर्क में आ जाती।

परन्तु यह जागृति देर तक नहीं रहती। वह स्वप्न में पुनः डूबने लगती! स्वप्न ही जीवन बन जाये तो कितना अच्छा? परन्तु यह सम्भव कहाँ? उसके स्वप्न कभी जीवित सत्य नहीं बन सकते! कहाँ वह एक मालिन की बेटी, और कहाँ चित्तौड़ का महाराणा?

उदय महाराणा बनने क्यों जा रहा है? उस पद में ऐसी कौन-सी महत्ता है? विक्षिप्त बनी नन्दिनी के मुख पर कुछ क्षणों के लिए स्मिति झलकती। उसका प्रिय उदय उसके पास ही रहे, इसलिए उदय का महा-राणा-पद उसे ज़रा भी अच्छा न लगा। परन्तु नन्दिनी की इच्छा-अनिच्छा से होता ही क्या? उदय उस महाराणा-पद को अस्वीकार करेगा नहीं!

वह तो सेना लेकर यह चला! सारी सेना को उसने देखा न?

परन्तु यह क्या ? उदय ने सेना को जाने दिया, और स्वयं असैनिक वेश-भूषा में नन्दिनी की ओर आया। नन्दिनी ने आँखों को मलकर पुनः देखा। उदय उसकी ओर आता हुआ दीख पड़ा। पहले जब-जब वह आँखों को मलती तब-तब उसका स्वप्न टूट जाता था। आज ऐसा क्यों नहीं हो रहा था? सारी सेना अदृश्य हो गयी थी; अश्वारोही भी दीख न पड़ते थे; अन्य साथियों का भी पता न था। उदय तो बराबर उसी की ओर आता दीख पड़ता था! बहुत समय से वह दीख न पड़ा था। नन्दिनी तो उसे प्रत्यक्ष न देखने का निश्चय किये बैठी थी। मेवाड़ के महाराणा के लिए अब एक मालिन के घर के पास आना सम्भव न था। तब वह इस ओर क्यों आ रहा था?

कदाचित् स्वप्न पूरा अदृश्य न हुआ हो! नन्दिनी ने पुनः आँखें मलकर देखा—उसने सोचा कि स्वप्न अदृश्य हो जायेगा, और उदय नजर न आयेगा। परन्तु आँखें खोलते ही पुनः उदय के दर्शन हुए। इस बार तो उदय बहुत निकट पहुँच गया था!

कितने ही स्वप्न ऐसे होते हैं जो आदमी को छोड़ते नहीं। जागृतावस्था में भी वे उपस्थित हो जाते हैं। इतना ही नहीं, वे जीवन-भर उसके साथ रहते हैं, और उसके जागृत व्यवहार को भी अपने रंग में रँग देते हैं। क्या उदय नन्दिनी के जीवन में बराबर उसके सामने ही खड़ा रहेगा?

'मैं उसे अपने सामने खड़ा न रहने दूँगी।' नन्दिनी ने अपने निश्चय को दुहराया, और पुनः अपनी आँखें मलीं। इस बार तो उदय अवश्य अदृश्य हो जायेगा, उसने विचार किया। परन्तु अदृश्य होने के बदले वह अधिक निकट आ गया। और उसकी आवाज़ भी सुनायी दी।

'नन्दिनी!' उदय का ही स्वर था।

स्वप्न इतना सत्य हो नहीं सकता! स्वप्नावस्था में रूप कदाचित् दीख पड़े; परन्तु क्या आवाज़ भी सुनायी देती है?

हाँ! क्यों नहीं? ऐसा भी हुआ करता है! केवल आवाज़ ही नहीं सुनायी देती, दिवास्वप्न में तो पूरा वार्त्तालाप होता है। अरे, दिवा-

स्वप्न में तो जीवन के विविध प्रसंगों का निर्माण भी होता है !

यह समझते हुए भी उदय की आवाज़ सुनकर नन्दिनी चौंक पड़ी। उदय उसके मकान के चबूतरे पर चढ़ रहा था। इस स्वप्न को दूर करने के लिए नन्दिनी ने उधर से अपना मुँह हटा लिया। परन्तु उदय के सम्बोधन में यह स्वप्न जीवित ही रहा।

'नन्दिनी !'

परन्तु घूमकर बैठी हुई नन्दिनी ने कोई उत्तर न दिया। उसे डर लग रहा था कि कह उसकी भ्रान्ति सत्य न हो जाये।

'तुम्हें क्या हुआ है ? मुँह क्यों घुमा लिया ?' उदय का प्रश्न नन्दिनी के कानों में गूँज उठा।

नन्दिनी की भ्रान्ति सत्य होती जा रही थी ! वास्तव में उदय वहाँ आ पहुँचा था, और नन्दिनी के पास आकर बैठ गया था। नन्दिनी को यह भी आभास हुआ कि उदय के वस्त्र उसका स्पर्श कर रहे हैं ! शरीर का एक अंग ल कर सकता है, सभी अंग भ्रम में पड़कर भूल नहीं कर सकते। अविद्यमान वस्तु कदाचित् आँखों को दृष्टिगोचर हो, कान कदाचित् किसी अविद्यमान स्वर को सुनें; परन्तु इन दोनों के साथ-साथ स्पर्श का भ्रम कैसे हो सकता है ?

'बहुत दिन से मैं नहीं आया, इसलिए क्या बुरा लग गया ?' उदय ने पूछा।

'तुम आये यही मुझे अच्छा न लगा।' नन्दिनी ने उत्तर दिया। स्वप्न हो तो भी उत्तर देने में क्या हर्ज ?

'कारण ?'

'कारण यही कि मेवाड़ के महाराणा और कोमलमेर की मालिन के बीच एक महासागर लहरा रहा है।' नन्दिनी ने उत्तर दिया।

'महासागर की बात कौन जाने ? मैं तो अपनी व्यथा कहने आया हूँ। महाराणा की मुसीबतें सुनकर तुमको हँसी आयेगी।'

'मेरा हँसना तो बहुत दिनों से बन्द हो गया है।' नन्दिनी बोली।

'आज तो मेरी बातें सुनकर तुम हँसे बिना रहोगी नहीं।'

'ऐसी कौन-सी बातें हैं?'

'एक के बाद एक ठाकुरों और सैनिकों का आना आरम्भ हो गया है, और प्रत्येक के सामने मेरा प्रदर्शन किया जाता है।'

'यह तो बड़ा ही अच्छा है! तुम हो भी प्रदर्शन के योग्य!'

'मगर यह सब क्या? सवेरे भी सैनिक आयें, दोपहर में भी आयें, मध्यरात्रि में भी आयें और आकर महाराणा के दर्शन की प्रार्थना करें! बिस्तर से खींचकर मुझे उनके सामने खड़ा किया जाता है!'

'इसमें बुरी बात क्या है? सब लोग मिलकर तुमको चित्तौड़ ले जायेंगे, और तुम मेवाड़ के सिंहासन पर बिराजोगे। तुम्हारे ऊपर छत्र रहेगा, चँवर डुलेंगे, और तुम्हारा जयघोष किया जायेगा।'

'अरे, छत्र-चँवर और गद्दी तो यहीं से गले पड़ गये हैं! एक क्षण के लिए भी मुझे एकान्त नहीं मिलता।'

'तब तुम यहाँ कैसे आ गये?'

'सबसे झगड़कर! मैंने कह दिया कि नन्दिनी के घर मेरे साथ कोई न आये....यदि आयेगा तो मैं छत्र, चँवर और राजदण्ड उठाकर फेंक दूँगा!'

'परन्तु....मैंने सुना है कि....'

'क्या सुना है?'

'कुछ नहीं; न पूछूँगी।'

'मैना है या नहीं?'

'नहीं; वह पानी भरने गयी है।'

'तुम पानी भरने नहीं जाती? दो-तीन बार मैंने तालाब पर तुम्हें खोजा भी।'

'नहीं। मा कहती है कि इधर कुछ समय तक मेरा बाहर निकलना ठीक नहीं।'

'परन्तु तुम तो हमारे बगीचे में भी नहीं आती?'

'तुम्हारे बगीचे में अब कोई दूसरा आयेगा।'

'आयेगा क्या, आने लगा है।'

'कौन?'

'नन्दिनी! तुमको पता है : दो लड़कियों से मेरे ब्याह की बात पक्की हुई है?'

'हाँ।'

'तुमने उन दोनो को देखा है?'

'नहीं। मैं देखना नहीं चाहती।'

'मैं भी देखना न चाहता था, परन्तु वे आँखों के आगे आ ही गयीं।'

'यह सब तुम जानो। मुझे क्या?'

'मेरे साथ किसका विवाह होगा, यह तुम नहीं जानना चाहती?'

'नहीं। तुम्हारे लिए तो हज़ार घरों से कन्याएँ आयेंगी! उन सबको मैं कहाँ तक देखती फिरूँ?'

'बात तो ऐसी ही है! एक के साथ विवाह निश्चित हुआ, तब मुझसे कहा गया कि चित्तौड़ जीतने के लिए यह सम्बन्ध आवश्यक है। दूसरी का तिलक आया, तब सब लोग कहने लगे कि राणा लग्न से मना नहीं कर सकते। इस प्रकार तो न जाने कितनी लड़कियाँ मेरे गले पड़ेंगी! दो कन्याएँ तो यहाँ आ भी गयीं! अभी तीसरी के विषय में बात चल रही है! समझ में नहीं आता कि क्या राणा बनने पर निरन्तर विवाह ही करते रहना पड़ेगा?'

'ये सब सम्बन्धी बनकर तुमको चित्तौड़ की गद्दी पर बिठायेंगे न!'

'परन्तु यह सब जंजाल लेकर गद्दी पर बैठना ठीक भी होगा?'

'दो कन्याओं को तो सँभाल ही लिया है न! दूसरी बीस-बाईस को भी सँभाल लेना!' सहज कटुता के साथ नन्दिनी ने कहा।

इन कटु शब्दों का असर उदय पर पड़ा नहीं। वह तो एक ऐसी उलझन में पड़ा हुआ था कि हँसना, रोना या गम्भीर बनना, कुछ उसकी समझ में न आता था।

'सँभालने-न सँभालने का प्रश्न ही कहाँ है ! ठीक पड़े या न ठीक पड़े, जिसकी ओर से कुंकुम और श्रीफल आये, उसे सँभालना ही पड़ता है । मैं राज-कार्य सँभालूँगा, या बैठा-बैठा रानियों से बातें किया करूँगा ?' उदय ने कहा ।

'उनके पारस्परिक झगड़ों को तय करने से यदि समय बचे, तो राज-कार्य देखना ।' नन्दिनी बोली ।

'तब उनमें परस्पर झगड़ा भी होगा ?'

'अवश्य ! एक दिन तुम्हारा स्नेह एक रानी पर अधिक होगा, दूसरे दिन दूसरी पर ! जिसका मान बढ़ेगा, अन्य रानियाँ उससे ईर्ष्या करेंगी; और तब आपस में झगड़े होंगे । तुम जब छोटे थे, तब कहानियाँ सुना करते थे ! अब तुम्हीं कहानी बन जाओगे। और याद है न कि कुमानेती रानी के बिना किसी कहानी का प्रारम्भ नहीं होता ?' नन्दिनी ने हँसते हुए कहा ।

नन्दिनी को हँसती हुई देखकर उदय को भी हँसी आ गयी । परन्तु यह मुक्त हास्य न था । इस हास्य में नन्दिनी को उदय की बढ़ती हुई उलझन स्पष्ट रूप से दीख पड़ी ।

'तुम तो रूठकर भी हँसती हो ! मेरी इन दो रानियों के मुख पर तो हास्य कभी आता ही नहीं ।' उदय ने एक लम्बी साँस ली ।

'तुमने उनको हँसाने का प्रयत्न किया ?'

'अवश्य ! ये जीते-जागते आदमी हैं या भूत, वह तो निश्चय कर ही लेना चाहिए ।'

'तब वे क्या निकलीं—आदमी या भूत ?'

'मेरी समझ में कुछ न आया । दो-तीन बार मैंने चुपचाप बुलाने का प्रयत्न किया....परन्तु भला वे कब बोलने लगीं ? उनकी कैसी लम्बी-काली आँखें । बाप रे ! मुझे आज तक कभी डर नहीं लगा; परन्तु रानी बनने के लिए आयी हुई कुँवरियों को देखकर मैं डर गया । मुझे ऐसा लगा कि यदि मैं उनसे अधिक बात करूँगा, तो वे कटार खींच-

कर खड़ी हो जायेंगी और शायद वार भी कर देंगी।'

इतना कहकर उदय हँस पड़ा। नन्दिनी भी अपनी हँसी न रोक सकी। उसने हँसते-हँसते कहा—वे तो राजपूतानी हैं! कोई साधारण स्त्रियाँ नहीं!

कुछ देर तक उदय और नन्दिनी दोनो चुप रहे। सायंकाल का अन्धकार बढ़ रहा था। परन्तु वह इतना घना न था कि आदमियों की हलचल दीख न पड़े। घर में इस समय मैना न थी। नन्दिनी की मौन व्यग्रता के कारण घर के कामकाज के साथ बाहर के काम का बोझ भी मैना के सिर पर आ पड़ा था। दीपक जलाने का समय हो गया था—देवता के सामने और घर में भी। नन्दिनी को इस काम की सुधि न रही। उदय न आया होता, तब भी वह उदय के विचार-सागर में निमग्न होकर यह काम भूल ही जाती!

उदय से बातचीत करते-करते, उसे आभास हुआ कि उसकी पुरानी चपलता पुनः लौट रही है। यों देखने में उदय और नन्दिनी दोनो शान्त थे; परन्तु उनके हृदय में शान्ति नहीं थी। उदय के मुख से नन्दिनी को यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि उदय अपनी शान्ति बड़ी कठिनाई से धारण कर रहा है। उसकी सब बातें एक ही लक्ष्य की ओर जा रही हैं।

'मैं ज़रा दीपक जलाकर आऊँ।' नन्दिनी ने धीरे से कहा। न जाने क्यों अन्धकार उसे आज प्रिय लग रहा था।

'नहीं; दीपक की कोई आवश्यकता नहीं।'

'क्यों? अँधेरे में इस प्रकार हम लोगों को कोई देख ले, तो क्या कहेगा?'

'कहेगा क्या?'

'कदाचित् तुम्हारे राणा-पद को नुकसान पहुँचे!'

'भले नुकसान पहुँचे, नन्दिनी! मैं तुमसे एक बात पूछने आया हूँ; मुझे सच्चा उत्तर देना।'

'ऐसी कौन-सी बात है ? मुझे जैसा ठीक लगेगा, वैसा उत्तर दूँगी।'

'सच्चा उत्तर न दो, तो तुम्हें मेरी शपथ !'

'बात-बात में शपथ लेना, यह महाराणा के लिए उचित नहीं। अच्छा ! कहो, क्या पूछना है ?'

'तुम्हें यह बात मालूम है कि तुम मुझे बहुत प्रिय हो ?'

'हाँ ! परन्तु इधर बहुत दिनों से तुम मिले नहीं, इससे मैं सोचने लगी कि कदाचित् तुमको कोई अधिक प्रिय सखी मिल गयी होगी।'

'यह सब मैं सुनना नहीं चाहता। अब बताओ कि तुम और हम एक साथ रह सकें, इतना प्रिय मैं तुमको लगता हूँ या नहीं ?'

'मेरी पल-पल पर यही इच्छा होती है कि जीते-जी और जीवन के बाद भी मैं तुम्हारे ही साथ रहूँ।'

'तब तुम मेरी पत्नी क्यों न बन जाओ ?'

'नहीं।'

उदय चौंक उठा।

क्षण-भर वह नन्दिनी की ओर देखता रहा। नन्दिनी ने अपना मुख नीचा कर लिया था। यद्यपि अन्धकार बढ़ गया था, तथापि यह मानिनी निडर बनकर अपने को अस्पृश्य रखने का प्रयत्न कर रही थी, यह भाव उदय से छिपा न रहा। नन्दिनी के उत्तर ने उदय को आश्चर्य में डाल दिया।

'तुम ना कहती हो ?' उदय ने पुनः पूछा।

'मैं ना कहती हूँ।'

'कारण ?'

'मेरे और मेवाड़ के महाराणा के बीच एक महासागर फैला हुआ है।'

'नन्दिनी ! मैं महाराणा-पद छोड़ दूँ, तो ?'

अब नन्दिनी के चौंकने की बारी आयी। उदय के सुन्दर मुख के दृढ़ निश्चय को अन्धकार भी छिपा न सका। राजपाट का त्याग करने

को तत्पर उदय नन्दिनी को धोखा तो नहीं दे रहा था ? अथवा क्या वह सचमुच नन्दिनी पर अपना राजपाट भी न्यौछावर करने को तैयार हो गया था ? लेकिन नन्दिनी इतना बड़ा आत्मबलिदान कैसे माँगे ?

'उदय ! जब से तुमने मुझसे कहा कि तुम मेवाड़ के महाराणा हो, तभी से मैंने तुम्हारा साथ छोड़ दिया। तुम भी मुझसे अलग हो गये। शिकार से हम दोनो पृथक् हुए ! उसके बाद हम दोनो मिले नहीं और भविष्य में भी न मिलें, इसी में हमारा श्रेय है।' नन्दिनी ने एक लम्बा विवेचन किया।

अँधेरे में आँगन का द्वार खुला। मैना ने आँगन में प्रवेश करते हुए पूछा—नन्दिनी, और कौन है ?

'उदय !'

'दीपक भी नहीं जलाया ?'

माता नन्दिनी के प्रति उदय के पागलपन को भली भाँति जानती थी, परन्तु यह पागलपन उन दोनो युवक-युवती को अन्धकारमय एकान्त का आश्रय दिलाये यह किसी भी माता को पसन्द नहीं आ सकता। और विशेष करके पन्ना की दी हुई धमकी के बाद तो मैना को उदय और नन्दिनी का मिलना ज़रा भी अच्छा नहीं लगता था। शिकार के दिन के बाद जो बातें पन्ना ने मैना से कही थीं, उन्हें मैना भूली न थी :

'देखो मैना, बेटी से हाथ धोना हो तो उसे उदय से मिलने देना !'

मैना अपनी बेटी से हाथ धोना नहीं चाहती थी। परन्तु उस दिन के बाद नन्दिनी स्वयं उदय से मिलने के प्रसंग बचाती थी। माता से भी यह बात छिपी न रही। आज उन दोनो को पुनः एक साथ बैठे हुए देखकर, मैना को फिर से पन्ना की धमकी का स्मरण हो आया।

'नहीं। अब दीपक जलाने जा रही हूँ। उदय के जाने की राह देख रही थी।' कहती हुई नन्दिनी खड़ी हो गयी, और दीपक जलाने के लिए घर में गयी।

मैना अभी चबूतरे तक पहुँची भी न थी कि इतने में द्वार पर रूपा नायक के शब्द सुनायी दिये—मैना ! उदयसिंह हैं ?

'हाँ भाई ! जाने के लिए हम लोग कितना कह रहे हैं, परन्तु वह जाते ही नहीं !' पास पहुँचे हुए रूपा नायक को मैना ने उत्तर दिया।

'राणाजी ! पधारें ! आपके आने की कभी से राह देखी जा रही है।' रूपा ने और निकट आकर कहा।

'मैं अभी न आऊँगा।' उदय ने कहा।

'यह कैसे हो सकता है ? मुहूर्त चला जायेगा, तो ?'

'चला जाने दो। दूसरा मुहूर्त निकालो।'

'सभी मांडलिक-सामन्त राह देख रहे हैं।'

'देखने दो। राणा मैं हूँ या मांडलिक ?'

दीपक जलाकर लौटी हुई नन्दिनी ने ये सब बातें सुनीं। चबूतरे पर दीपक रखकर उसने कहा—उदय ! आज से अब इस आँगन में पैर न रखना।

'क्यों ? मैं तो मेवाड़ का महाराणा हूँ।'

'तब तो तुम्हें महल में ही रहना चाहिए।'

'महल में रहकर भी यदि मैं यहाँ आऊँ, तो ?'

'मेरा मुख तुम देख न पाओगे।'

'ऐसा कड़ा निश्चय करोगी ?'

'एक बार जाकर चित्तौड़ की गद्दी पर बैठो। उसके बाद आओगे, तो कदाचित् भेंट कर लूँगी। उसके पहले तो नहीं।' कहकर नन्दिना घर के भीतर चली गयी।

उदय खड़ा होकर तेज़ी से चली जानेवाली उस सौन्दर्य-मूर्ति को दो-चार क्षण तक देखता रहा।

मैना और रूपा ने एक-दूसरे के सामने देखा।

'नायक ! चलो, मैं आता हूँ।' कहकर उदय चबूतरे से नीचे उतरा। नायक भी उसके साथ-साथ चला।

आँगन से बाहर जाते-जाते उदय को ऐसा लगा मानो नन्दिनी रो रही है ! नन्दिनी का बलात् रोका हुआ रुदन-स्वर उसके कान में पड़ा। उदय रुक गया। रोती हुई नन्दिनी की मूर्ति उसकी दृष्टि के सामने खड़ी हो गयी। उसकी आँखों ने—कल्पना ने, जिस दृश्य को देखा, वह वास्तव में सत्य था।

सचमुच नन्दिनी अपनी कोठरी में जाकर हाथों पर मस्तक रखे रो रही थी। क्यों ?

उदय उसे प्रिय लगता था, तथापि वह उसकी पत्नी बनने को तैयार न थी—उसके महाराणा-पद को त्याग करने की तत्परता पर भी।

इस प्रश्न पर विचार करता हुआ उदय कुछ देर तक खड़ा रहा।

'आँगन में खड़े-खड़े बहुत देर हुई ! अब आगे बढ़ेंगे ?' रूपा नायक ने पूछा।

'रूपा ! मेरे पैरों का सारा बल ही जैसे चला गया।' उदय बोला।

'चित्तौड़ का चिन्तन करें ! शरीर में बिजली दौड़ जायेगी।' रूपा ने हिम्मत दिलायी।

'मुझे तो चित्तौड़ की गद्दी से 'नन्दिनी कहीं अधिक प्रिय है।' कहकर उदय ने पैर बढ़ाये।

देखते-ही-देखते दोनो अन्धःकार में अदृश्य हो गये।

उदय की कल्पना दीपक के मन्द प्रकाश में नन्दिनी के नेत्रों से गिरनेवाले आँसुओं की माला बनाकर दिखा रही थी !

मैना ने देख लिया कि यह कल्पना ही न थी।

'सामान्य और विशिष्टता के बीच अनुराग का जन्म हो जाये, तो आँसू के अतिरिक्त और मिल ही क्या सकता है !'—माता ने सोचा।

६

'रूपा ! तुम्हारी समझ में, कुछ आता है ?' पन्ना ने पूछा।

'एक ही बात समझ में आती है। बनवीर की अब खैरियत नहीं !

उदयसिंह के साथ चित्तौड़ पहुँचने-भर की देर है।' रूपा नायक ने उत्तर दिया।

'उदय चित्तौड़ जाना नहीं चाहता।'

'क्यों? किसने कहा?'

'उदय ने कहा।'

'परन्तु न जाने का कोई कारण?'

'वह कहता है कि मुझे राज्य नहीं चाहिए।'

'तब?'

'कहता है कि मुझे यहीं रहना है।'

'यहाँ ऐसा क्या है जिससे....'

'अरे, वही नन्दिनी....'

रूपा चौंक पड़ा; पन्ना शान्त रही। परन्तु पन्ना के शान्त मुख पर दृढ़ता की रेखाएँ स्पष्ट थीं। उदय को जीवित रखनेवाली यह धाय उदय की सच्ची माता बन गयी थी! उसके विचारों में, कल्पना में, भावनाओं में और यहाँ तक कि उसके स्वप्नों में भी उदय के अतिरिक्त और कोई न था। यदि कोई अन्य भावना आती, तो वह भी उदय से सम्बद्ध होकर ही! पन्ना के सुन्दर मुख पर दीख पड़नेवाली कठोरता इस बात की सूचक थी कि उसके जीवन में उदय के अतिरिक्त और कोई रसोत्पादक वस्तु नहीं थी। अपने बालक के लिए, बालक के विकास के लिए, बालक के उज्ज्वल भविष्य के लिए उसका स्नेहार्द्र मातृ-हृदय सर्वदा नयी-नयी योजनाएँ बनाता रहता। इतना ही नहीं, उसके भविष्य के लिए बनी योजना शीघ्र कार्यान्वित हो, इस हेतु भी वह कभी-कभी राजनीतिक कठोरता और सैनिक उग्रता धारण करती थी। उदय के प्रति उसके वात्सल्य ने उसे उदय पर सतर्क दृष्टि रखने को बाध्य कर दिया था। उदय के प्रत्येक कार्य पर वह दृष्टि रखती, और उस कार्य के पीछे रहनेवाली उदय की सभी भावनाओं को समझने का प्रयत्न करती। और यदि उसे ज़रा भी शंका हो जाती कि

अमुक तत्व उदय के लिए हानिकारक हैं, तो उन्हें निर्मूल करने में वह ज़रा भी न हिचकती।

'परन्तु....नन्दिनी ने तो उदय से साफ-साफ कह दिया था कि वह उसकी ओर देखेगी भी नहीं !' रूपा ने अपने कान से सुनी हुई बात कह सुनायी।

'मैं यह मानती नहीं। सीधे-सादे विवाह कर लेनेवाले मुगल की बात दूसरी होती है; उदय और नन्दिनी की बात बिलकुल अलग है।'

'दो कन्याओं का विवाह तो उदय के साथ हो गया है। देखते-ही-देखते वह नन्दिनी को भूल जायेगा।'

'मुझे नहीं लगता कि वह भूल जायेगा।'

'नन्दिनी को हम लोग साथ ले लें ! वह मालिन की लड़की है; दासी के रूप में वह भले ही....।'

'तुम क्या कहते हो ? नन्दिनी यह स्थिति स्वीकार करेगी ?'

'इसमें हर्ज़ ही क्या है ?'

'यह लड़की या तो महारानी बनेगी, या रूपांगना ! दासी बनकर महल में वह नहीं रहेगी।'

'परन्तु मालिन की एक लड़की महारानी कैसे बन सकती है ?'

'न बने तो उदय चित्तौड़ का वास्तविक महाराणा नहीं बन सकेगा।'

'अब हो क्या सकता है ? सारी सैना तैयार खड़ी है। बनवीर को भी सब बातें मालूम हो गयी हैं। कुछ सैनिक टुकड़ियों को तो चित्तौड़ की ओर रवाना भी कर दिया है....और उदय का स्वागत करने के लिए चित्तौड़ के आस-पास की प्रजा अधीर है....'

'परन्तु इस लड़की का क्या किया जाये ? यह तो उदय के मार्ग में राहू बनकर बैठी है !'

'उसकी मा किसी से उसका विवाह क्यों नहीं कर देती ?'

'मा का कहना माननेवाली सन्तानों का युग बीत गया !'

'इससे तो अच्छा है, ऐसा सन्तान ही न पैदा हो !'

'मैं कब से इसी ओर तुम्हारा ध्यान खींच रही थी। परन्तु तुम समझते ही न थे!'

'तुम्हारे कहने का तात्पर्य?'

'कुछ ऐसा करो जिससे ऐसी सन्तान जीवित ही न रहे।' पन्ना ने कहा। यह कहते-कहते उसके मुख पर कठोरता झलकने लगी। गवाक्ष के बाहर उसने अपनी दृष्टि डाली! उसकी आँखों से बिजली-जैसी चमक निकल रही थी। परन्तु उसके मुख पर छाया हुआ निश्चय सारे मुख पर घनघोर बादलों की श्यामता फैला रहा था।

रूपा अभी तक पन्ना के मर्म को पूरी तरह समझा न था। वह उसे किस ओर ले जाना चाहती है, उसके कथन का भाव क्या है, यह रूपा के ध्यान में नहीं आया। उदय और नन्दिनी न रहें, ऐसा काम करना; क्या तात्पर्य? उदय के ही लिए तो पन्ना जीवित थी!

'अब तक तुम कुछ नहीं समझे?' पन्ना ने पूछा।

'नहीं! साफ़-साफ कहो।'

'साफ़ बात यह है कि तुम नन्दिनी का काम तमाम कर दो।'

'किस तरह?'

'जिस तरह तुम चाहो! विष दे सको, तो विष दो; झटके से उड़ा सको, तो क़त्ल करो।' पन्ना ने स्पष्ट रूप से सूचना दी; और यह सूचना देकर उसने चारों ओर नज़र डाली। भित्ति पर, आकाश पर, सिर पर, छत पर किसी ने इस कथन को सुना तो नहीं? परन्तु गिरा हुआ पाँसा बदले कैसे? छूटा हुआ बाण लौटे कैसे?

भित्ति पर किसकी परछाईं थी?

केवल सन्देह-मात्र था! भ्रान्ति थी।

और यदि पन्ना के कथन को, किसी ने सुन भी लिया तो भय क्या? पन्ना ने सच्चा मार्ग बताया था। यदि उदय को मेवाड़ का महाराणा बनाना है, तो उसे जीवन-भर नन्दिनी से दूर ही रखना पड़ेगा। दूर रखने का अर्थ?

नन्दिनी यदि जीवित रहेगी, तो वह उदय के भविष्य को अवश्य बिगाड़ देगी। नन्दिनी को तो मार्ग से हटाना ही पड़ेगा। वह हटेगी ही! पन्ना का निश्चय दृढ़तर हुआ।

'इतनी हद तक जाने की क्या आवश्यकता?' उलझन में पड़े हुए रूपा ने कहा। हिंसा-अहिंसा के प्रश्न इस भील को ज़रा भी परेशान न करते थे; रूपा के लिए संकट काल में मालिक की जान बचाने के लिए अपना प्राण दे देना, अथवा अन्य किसी का प्राण ले लेना, साधारण बात थी। आवश्यकता पड़ने पर किसी मनुष्य या प्राणी को एक ही झटके में क़त्ल करने में उसे ज़रा भी संकोच न होता। परन्तु मरने-मारने को सहज माननेवाले रूपा को पन्ना की सूचना अत्यधिक कठोर लगी। स्वामिभक्त होने पर भी उसका हृदय कोमल था।

'तुम सब पुरुष तो स्त्रैण हो गये हो! इसी लिए दिल्ली की गद्दी पर उस छोटे-से अकबर ने अपना अधिकार जमा लिया!' पन्ना ने रूपा से कहा।

'दिल्ली से हमको कोई सरोकार नहीं! उदय को मेवाड़ की गद्दी पर बिठाना हमारी जिम्मेदारी है।' रूपा ने उत्तर दिया।

'तब मेरे सामने खड़े न रहो, अपना रास्ता पकड़ो।'

'मैं तो यही कहता हूँ कि बिना प्राण लिये ही यदि हम नन्दिनी को उदय के मार्ग से हटा दें, तो?'

'असम्भव है। मौत ही उन दोनों को पृथक् कर सकती है। और नन्दिनी की अभी प्राकृतिक मौत हो नहीं सकती!'

'परन्तु इस प्रकार किसी कुमारिका को....'

'कुमारिका का बलिदान दिये बिना चित्तौड़ की कुलदेवी प्रसन्न नहीं हो सकतीं। तुमने ठीक कहा। मुझे लगता है कि मेरी तरह तुमने भी कोई स्वप्न देखा है।'

'स्वप्न कैसा? मुझे कोई स्वप्न नहीं आया!....तुमने कौन-सा स्वप्न देखा है?'

'देवी के पूजन की सब सामग्री तैयार हो चुकी है, न्यूनता केवल एक वस्तु की है : बलि के लिए एक कुमारिका की !'

'यह भोग किसने माँगा ?'

'स्वप्न में स्वयं कुलदेवी ने प्रत्यक्ष मुझसे माँगा।'

'नन्दिनी का भोग माँगा? माताजी ने ?'

'नन्दिनी का नाम तो नहीं लिया, परन्तु ऐसी एक कुमारिका का भोग माँगा, जो उदय के मार्ग को रोकती हो ! नन्दिनी के अतिरिक्त और कौन ऐसी कुमारिका है, जो उदय को चित्तौड़ जाने से रोके ?'

'सब प्रकार से योग्य ऐसे किसी अन्य व्यक्ति का बलिदान दें, तो ?'

'वह तो मैंने दे ही दिया—मेरे पुत्र का ! पन्ना की आँखें विशाल हो गयीं, और खुली हुई आँखों से उसने अपने हृदय की गहराई का आभास दिया। और वास्तव में रूपा को विश्वास हो गया कि उदय के उत्कर्ष के लिए एक भोग पन्ना के पुत्र का तो माताजी ने लिया; अब वह दूसरा भोग नन्दिनी का माँग रही हैं।

सारा वातावरण शान्त-स्तब्ध हो गया। रूपा का हृदय काँप उठा। पन्ना के साथ उसने बहुत-से वर्ष बिताये थे। वह उसे बहुत निकट से पहिचानने लगा था। कभी-कभी उसने पन्ना को क्रुद्ध होते हुए भी देखा था; कभी-कभी क्रूर होते हुए भी देखा था। परन्तु इस समय पन्ना के मुख पर जो भावों का परिवर्तन हुआ, वह स्पष्ट रूप से सूचित करता था कि उसके शरीर में कोई दिव्य-शक्ति प्रवेश कर रही है ! रूपा को भय लगा कि पन्ना की आवेश-भरी उग्रता कहीं उसी को भस्मसात् न कर दे !

'पन्ना ! कहो तो मैं अपना भोग दे दूँ ?' रूपा ने कहा।

'तुम और हम तो प्रतिक्षण-अपना भोग दे रहे हैं। इस भोग से काम न चलेगा। भोग देना हो तो किसी सुकुमार, सुन्दर और स्नेह-भरे शरीर की बलि चढ़ाओ। इसके बिना रणचण्डी रीझेंगी नहीं !' पन्ना ने कहा। उसका आवेश अभी कम न हुआ था।

'परन्तु देखो, पन्ना ! तुम एक बात भूल जाती हो।' रूपा ने साहस-पूर्वक कहा।

'कौन-सा ?'

'नन्दिनी ने तो उदय से कहा है कि जब वह चित्तौड़ जीतकर आयेगा, तभी वह उसको अपना मुख बतायेगी।'

'इसी में तो सब से बड़ा भय निहित है ! इसके बाद तो नन्दिनी उदय की संयोगिता बन जायेगी, और उदय चित्तौड़ को—अरे, सारे मेवाड़ को खो देगा। रूपा ! रूप, चांचल्य और बुद्धि की अतिशयता जिस स्त्री में हो उसे तो कुचल ही देना चाहिए।' आज्ञा दे रही हो, इस प्रकार पन्ना बोली। रूपा को ऐसा आभास हुआ, मानो पन्ना के शरीर में देवी का प्रवेश हुआ है।

इतने में एकाएक उदय के आने का पदरव सुनायी दिया और पन्ना का आवेश घटने लगा। वह तुरन्त ही स्वस्थ होकर बैठ गयी; रूपा भी कुछ लज्जित-सा हो गया। उदय दौड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा।

'क्या करते हो तुम दोनो ? जब देखो तब छिप-छिपकर बातें किया करते हो....!'

उदय को बीच ही में रोककर पन्ना ने कहा—तुमसे कुछ छिपा नहीं है, उदय ! और यदि कुछ होगा भी, तो वह तुम्हारे ही भले के लिए, लाभ के लिए, तुमको गद्दी पर बिठाने के लिए !

'गद्दी पर तो मैं बैठ चुका।'

'चित्तौड़ की गद्दी पर बैठना अभी बाक़ी है न ?'

'उसके लिए तो मैं तैयार ही हूँ; अब देरी तुम लोगों की है ! काका-जी ने आज्ञा दे दी; कहो तो शस्त्र धारण करके मैं इसी समय घोड़े पर सवार हो जाऊँ !'

'अच्छा ! तुम्हारा विचार कैसे बदला ?' पन्ना ने पूछा।

'नन्दिनी बड़े ही दृढ़ विचार की है ! मैं उससे फिर मिलने गया, तब वह मिली नहीं, और उसने कहला दिया कि जब तक मैं चित्तौड़

जीतकर नहीं आऊँगा, तब तक वह अपना मुखड़ा नहीं दिखायेगी। अब तो चित्तौड़ जीते बिना, दूसरा कोई चारा नहीं। नन्दिनी कितनी अच्छी है। मैं चित्तौड़ जीतूँगा!'

'शाबाश! अब चित्तौड़ की विजय निश्चित है! और....और....मैं भी नन्दिनी को फूलों से सजाकर तुम्हारे पीछे ही लें आती हूँ!' पन्ना ने कहा। पन्ना के प्रसन्न वदन पर कोई श्याम छाया झलक उठी, जिसे रूपा ने भी साश्चर्य देखा!

उदय भी विचार में पड़ गया था। कभी उसके मन में उत्साह की लहरें उठतीं। चित्तौड़ का महाराणा-पद भी वांछनीय वस्तु थी। उसका त्याग करना उचित न था। परन्तु उस पद को स्वीकारने के बाद—अरे, उसके पहले भी, कितने मानवों की बलि चढ़ानी पड़ेगी? इस पद को प्राप्त करने के बाद ही नन्दिनी ने अपना मुख दिखाने का वचन दिया है! नन्दिनी के दर्शन-मात्र से उसको सन्तोष होगा? और यदि चित्तौड़ की गद्दी प्राप्त करने के बाद भी नन्दिनी न मिली, तो?

'उदय! किस विचार में पड़ गये?' पन्ना ने पूछा।

'कुछ नहीं। परन्तु नन्दिनी यदि तुम्हारे साथ चित्तौड़ न आयी, तो?' उदय ने उत्तर दिया।

'मैं उसे पकड़कर ले आऊँगी। किसी भी प्रकार!'

'इस प्रकार वह आयेगी नहीं।'

'देखो, उदय! तुम्हारे जीवन में सब अनहोनी बातें हुई हैं। नन्दिनी का आना तब सम्भव क्यों न होगा?'

'मुझे इस बात का विश्वास हो जाये, तो मेरे हाथों में अधिक बल आ जायेगा।'

कुछ देर तक विचार करके पन्ना ने कहा—मुझे इसमें कोई कठिनाई नज़र नहीं आती। समझ लो कि नन्दिनी ने चित्तौड़ आने के लिए हाँ कह दिया। तुम्हे विदा करके, तुम्हारी सेना के पीछे-पीछे मैं और नन्दिनी चित्तौड़ पहुँचते हैं।

'यदि, ऐसा न हुआ, तो?'

'तुम चित्तौड़ न जाना। चण्डी के मन्दिर में, यदि तुम मुझे और नन्दिनी को पाओ, तो समझ लेना कि नन्दिनी ने चित्तौड़ आना स्वीकार कर लिया।'

नन्दिनी के पुनर्दर्शन की आशा ने उदय के मन को उत्साहित किया। चित्तौड़ पर चढ़ाई करने का प्रस्ताव उसने स्वीकृत कर लिया। परन्तु न जाने क्यों, पन्ना की शाबाशी और नन्दिनी को साथ में लेकर चित्तौड़ आने के आश्वासन पर उसे विश्वास न हुआ। उत्साह और अविश्वास दोनो भावनाओं का अनुभव करनेवाला उदय पन्ना को एक तीव्र दृष्टि से देखता हुआ बाहर चला गया।

पन्ना हँस पड़ी। रूपा का संशय गया नहीं।

'हँसती क्यों हो, पन्ना?' रूपा ने पूछा।

'उदय ने सरलता से मेरा कहना मान लिया! अब जिस काम के लिए मैं जी रही हूँ, वह पूरा होगा।' पन्ना की आँखों के आगे, पुराना चित्तौड़, वहाँ का राजमहल, और उस राजमहल में उदय का सकुटुम्ब रहना, ये सब दृश्य खड़े हो गये।

'नन्दिनी को तुम हम लोगों के पीछे-पीछे ले आओगी न?' रूपा ने पूछा।

'कैसी बात करते हो?'

'उदय से अभी ही तुमने यह बात कही!'

'जितना कहें, उतना सब करना ही पड़ता है?'

'उदय के साथ झूठी बातें करनी होंगी?'

'झूठ ही ने तो उदय के प्राण बचाये हैं।'

'तब नन्दिनी के विषय में....'

'एक बार तुमको समझा दिया। नन्दिनी की बलि के संकल्प-मात्र ने उदय के विचार को बदल दिया। बलि चढ़ाने पर यज्ञ पूर्ण होगा।'

'पन्ना! नन्दिनी को जीवित रहने दो। वह जीवित रहेगी, तो उदय,

का हृदय प्रसन्न, उत्साहपूर्ण रहेगा; उसके मरने से उदय के जीवन में रस नहीं रहेगा, वह जीता हुआ शव हो जायेगा।'

'रूपा ! देवी की आज्ञा के सामने दया को स्थान नहीं। सेना यहाँ से कूच करे, उसके बाद नन्दिनी को तो खत्म करना ही पड़ेगा। अपने विश्वासपात्र दस भील इस कार्य के लिए तैयार रखना।'

'परन्तु मैं तो उदय के साथ जा रहा हूँ।'

'मैं भी तुम्हारे पीछे ही आ रही हूँ।'

'तब यह काम होगा कैसे ?'

'मैंने कहा न कि अपने विश्वास के दस भील मेरे सिपुर्द करते जाओ ?'

'समझ लो कि सौंप दिये ! परन्तु पन्ना ! एक बार और इस बात पर विचार कर लो।'

'मैंने पूरी तरह से विचार कर लिया है। शूरता और सौन्दर्य का साथ होगा, तो शूरता अदृश्य हो जायेगी।'

'पृथक् होने पर शूरता कदाचित् संन्यास ले ले !'

'यह सब मैं नहीं जानती। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि नन्दिनी का सौन्दर्य किसी प्रकार जाना ही चाहिए। यदि वह जीवित रही, तो मेवाड़ चौहानों की दिल्ली बन जायेगा। उदय का जीवन बलि की परम्परा माँगता है। पहली बलि मेरी, दूसरी नन्दिनी की, रूपा ! तीसरी बलि कदाचित् तुम्हारी भी हो....'

पन्ना का मुख पुनः चमकने लगा।

बाहर एकाएक रणवाद्य बजने लगे। अन्य वाद्यों ने उनका साथ दिया। इस महानाद में पन्ना ने घोड़ों की हिनहिनाहट और शस्त्रों की खनखनाहट भी सुनी।

पन्ना के आत्मदान का पहला भाग सफल हो रहा था !

७

'नन्दिनी ! मेरे साथ चलो !' पन्ना ने नन्दिनी से कहा ।

'मैं घर के बाहर पैर भी न रखूँगी ।' पन्ना की ओर देखे बिना ही नन्दिनी ने उत्तर दिया ।

पन्ना नन्दिनी को बुलाने के लिए आयी थी । उदय अपनी सेना के साथ कोमलमेर से कूच कर रहा था । दुर्ग के बाहर थोड़ी ही दूर पर चण्डी का देवालय बना हुआ था । उस देवालय में बैठकर पन्ना विजय-यात्रा के लिए निकलनेवाले उदय को देखना चाहती थी । उसने अपनी पालकी तैयार करने की आज्ञा दी, और अपने साथ चलने के लिए नन्दिनी को बुला भेजा । नन्दिनी आयी नहीं, इसलिए पालकी लेकर वह स्वयं नन्दिनी के घर पहुँची । उदय और नन्दिनी की गाढ़ मैत्री कोमलमेर में सर्वविदित थी; और उस युग में इस प्रकार का सम्बन्ध रँगीले राजपूतों के लिए कोई नयी बात न थी । पन्ना, उदय अथवा दुर्ग का अन्य कोई व्यक्ति यदि मालिन मैना के घर की ओर जाता दीख पड़ता तो लोग हँस देते थे; और उनके मन में कुतूहल के अतिरिक्त और कोई भावना उत्पन्न न होती थी । सबको यह विश्वास हो गया था कि समय आने पर नन्दिनी उदय के अन्तःपुर में अवश्य प्रवेश करेगी । धीरे-धीरे इस बात के दृढ़ हो जाने पर उदय और नन्दिनी के विषय में किसी को विशेष रस रहा नहीं । रानियों के महल में सामान्य कुटुम्ब की नेक ऐसी सुन्दरियाँ राजपुरुषों की रूप-लालसा तृप्त करने के लिए रहा करती थीं । कोमलमेर की प्रजा को और नन्दिनी की सखियों को स्पष्ट रूप से ऐसा लग रहा था कि नन्दिनी भी इसी मार्ग पर जा रही है । इसलिए पन्ना की पालकी को मैना के घर की ओर जाते हुए देखकर किसी को भी आश्चर्य न हुआ ।

फिर आज तो कोमलमेर की प्रजा के मन में दूसरी ही उमंग थी । आज उदय सेना के साथ चित्तौड़ की ओर प्रयाण करनेवाला था । अतः सभी स्त्री-पुरुष—बालक, युवा और वृद्ध—उदय की सवारी देखने के

लिए कोमलमेर के सुसज्जित भागों में एकत्रित हुए थे। कुछ लोगों के हाथ में पुष्प और पुष्पमालाएँ भी थीं।

दुंदुभि बज रही थी, नौबत की आवाज़ आ रही थी, झंडे लहरा रहे थे, और जहाँ-तहाँ सैनिकों के यूथ दीख पड़ते थे। मांडलिक राजा छत्रधारी सेनानायक और उदय की सहायता के लिए आये हुए अन्य वीर अपनी-अपनी सैन्य-टुकड़ियों के आगे अश्वारूढ़ होकर आगे बढ़ने की तैयारी कर रहे थे। अधीर अश्वों की हिनहिनाहट दूर-दूर से सुनायी देती थी।

ऐसे समय पन्ना की पालकी मैना की वाटिका में आयी। उसमें से उतरकर पन्ना ने मैना के घर में पदार्पण किया। मैना चबूतरे पर ही बैठी थी, परन्तु नन्दिनी घर के भीतर थी। जिस समय सारा ग्राम घर-बार छोड़कर उदय की सवारी देखने के लिए बाहर निकल आया था, उस समय नन्दिनी घर के भीतर छिपकर बैठी थी।

पन्ना को देखकर मैना चौंक पड़ी।

'मैना! नन्दिनी कहाँ है?' पन्ना ने पूछा।

'घर में ही बैठी है।'

'घर में क्यों बैठी है? उदय की सवारी देखने न जायेगी?'

'मुझे पता नहीं।'

'उसे बाहर बुलाओ न?'

'वह नहीं आती।'

'यह क्या? मैं तो उसे लेने आयी हूँ।'

'कहाँ ले जाओगी?'

'चण्डी के मन्दिर में।'

'मुझे चण्डी या चामुण्डा किसी से काम नहीं।' नन्दिनी ने भीतर से ही कहा।

'अरे, ज़रा बाहर चबूतरे पर तो आओ! तुम्हें काम न हो, परन्तु कदाचित् चण्डी-चामुण्डा को ही तुम्हारा काम हो, तो?' पन्ना ने हँस-

कर कहा । पन्ना की हँसी में वृद्धावस्था दीख पड़ती थी अथवा कुरूपता ?

'मन्दिर में गये बिना ही यदि उसकी इच्छा होगी तो मेरी बलि ले सकेंगी ।' नन्दिनी ने उत्तर दिया ।

'ऐसी निराश क्यों होती हो ? ज़रा बाहर तो आओ ।' पन्ना ने आग्रहपूर्वक कहा ।

नन्दिनी खण्ड में से बाहर चबूतरे पर आयी । देखनेवालों को ऐसा लगा मानो पन्ना की आँखों से वात्सल्य का निर्झर बह चला है ।

'देखो, नन्दिनी ! तुम जानती हो न कि मैं उदय की मा हूँ ?' पन्ना ने कहा ।

'हाँ, जिस मा ने उदय का दो राजकन्याओं के साथ विवाह कर दिया, उसे भला मैं कैसे न जानूँगी ?'

'इस मा ने उदय को बचाने के लिए अपनी एकमात्र सन्तान को अपनी आँखों के सामने मरने दिया, यह भी तुम जानती हो न ?'

'यह बात अब किसी से छिपी नहीं, पन्ना देवी ! सारा मेवाड़ जानता है ।' मैना बीच ही में बोल उठी ।

'और यही उदय चित्तौड़ का महाराणा बनकर लौटे, तो तुम प्रसन्न होगी या नहीं ?'

'नहीं; जब तक वह महाराणा नहीं बना था, तब तक वह मुझे अधिक प्रिय था ।'

'और अब ?'

'अब प्रसन्न होंगी उसकी महारानियाँ ! मुझे क्या ?'

'नन्दिनी, बेटी ! मैं कोई महारानी न थी, मात्र एक धाय थी । आज मैं उदय की माता बन गयी हूँ । तुम भले महारानी न हो....'

'आपका यहाँ क्या काम है ? मुझे क्यों ऐसी बातें करने को विवश करती हैं ? मैं तो उदय को भूलना चाहती हूँ....मेवाड़ के महाराणा से मुझे कोई सरोकार नहीं । आप खुशी से जाकर उसकी सवारी देखें ।'

'तुम्हारे बिना मैं उसकी सवारी देखने न जाऊँगी ।'

'कारण ?'

'कारण यही कि मैंने उदय को वचन दिया है कि मैं तुमको लेकर सवारी देखने आ रही हूँ। यह वचन न देती तो उदय चित्तौड़ की ओर प्रस्थान को तैयार न होता।'

'मैंने भी अपना निश्चय उसे सुना दिया है।'

'कौन-सा निश्चय ?'

'यही कि वह चित्तौड़ की गद्दी पर आसीन होने के बाद जब लौटेगा, तभी मैं उसे अपना मुख दिखाऊँगी।'

पन्ना नन्दिनी से लिपट गयी, और उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगी। चित्तौड़ के सिंहासन का भी मोह त्याग करने को तैयार होनेवाले राजकुमार के हृदय पर क्षात्रधर्म का पुट चढ़ानेवाली इस कुमारिका का आत्म-बलिदान साधारण न था! पन्ना ने अपने पुत्र को बलि चढ़ाया, नन्दिनी ने प्रेम को! पन्ना का हृदय एक बार करुणा से भर आया और वह रोने लगी। अश्रुभरे नयनों से जो पन्ना माँगे उसे विमुख कैसे किया जाये? नन्दिनी का हृदय कुछ पसीजा।

'बेटी! मेरे जीवन की अन्तिम आशा को तुमने फलीभूत किया। तुमने यह न कहा होता, तो उदय आज सेना लेकर चित्तौड़ न जाता।' पन्ना ने दर्दभरे स्वर में कहा।

'आपका काम हो गया! अब आप पधारें! हम ग़रीबों के घर आप-जैसे पालकी में बैठनेवाले आगन्तुक शोभा नहीं देते।' नन्दिनी बोली।

'मैं तो तुमको इसी पालकी में बैठाकर ले चलने के लिए आयी हूँ।'

'परन्तु मैंने उदय को अपना मुख न दिखाने का निश्चय किया है।'

'तुम अपना मुख न दिखाना, उदय का मुख तो ज़रा देख लेना।'

'किस लिए ?'

'इसलिए कि चित्तौड़-विजय करके जब लौटे, तब भी वह मुख तुम्हें प्रिय लगता रहे।'

'आपके कहने का भावार्थ मैं नहीं समझती।'

'मेरा तो इतना ही कहना है कि मेरे साथ चलो और यशस्वी उदय को एक नज़र देख लो, मेरा कहना मानो ।'

'परन्तु इस प्रकार छिपकर उसे देखने की आवश्यकता ?'

'तुम्हारे-जैसी पवित्र, प्रेममयी और आत्म-बलिदान देनेवाली कुमारिका का आशीर्वाद उदय को प्राप्त हो, इसी बात की मैं—उदय की माता आकांक्षा करती हूँ ।'

'चलो, मैं तैयार हूँ !' नन्दिनी ने कहा ।

मैना ने थोड़े कम्पन का अनुभव किया । उदय और नन्दिनी का परस्पर बढ़नेवाला सम्बन्ध उसे प्रिय लगता था; तथापि वह भयप्रद है, यह भी वह जानती थी । इस मैत्री का परिणाम न जाने क्या आये ? उसकी समझ में कुछ आया नहीं । कभी उसे इच्छा होती कि पन्ना इतना अनुनय-विनय कर रही है, तब नन्दिनी भले ही पन्ना के साथ जाये । परन्तु तुरन्त ही उसे दूसरा विचार आता कि पन्ना नन्दिनी को अपने साथ न लिवा जाये तो अच्छा । कहाँ वह उदय की माता सरीखी, और कहाँ नन्दिनी एक ग़रीब मालिन की बेटी ! इन दोनों का सहगमन अच्छा नहीं !

'तो क्या तुमने जाने का विचार कर लिया ?' मैना से पूछे बिना न रहा गया ।

'तुमको ठीक न लगता हो, तो मैं न जाऊँ ।' नन्दिनी ने उत्तर दिया ।

'मैना ! तुम क्यों रोकती हो ? इसे एक बार फिर उदय को देख लेने दो !' पन्ना ने कहा ।

'बड़ों और छोटों का साथ कैसा, पन्ना देवी ! हम लोगों को....' मैना ने कहा ।

बीच ही में बात काटकर पन्ना बोली—मैं भी बहुत छोटी हूँ । नन्दिनी को अपने साथ इसलिए ले जा रही हूँ कि उसकी लघुता बड़प्पन प्राप्त करे, कीर्ति प्राप्त करे ।

'इसे वापस किसके साथ भेजोगी ?'

'मैना ! अभी तक तुमने अपनी बेटी को पहिचाना नहीं ? इसको किसी से साथ की आवश्यकता नहीं। यह सारे मेवाड़ को ठिकाने पहुँचा-कर अकेली लौट सकती है ! चलो !' कहती हुई पन्ना हँस पड़ी, और नन्दिनी का हाथ पकड़कर उसने सहज खींचा। पन्ना के साथ खिंचती हुई नन्दिनी जाकर पालकी में बैठी।

बगीचे में से बाहर निकलते समय मैना ने पुकारकर कहा—देखो पन्ना देवी ! मेरी बेटी को रात होने के पहले ही यहाँ पहुँचा जाना।

पन्ना ने हाथ उठाकर विश्वास-मुद्रा का प्रदर्शन करते हुए मैना को आश्वासन दिया। आश्वासन उसने अवश्य दिया, परन्तु उसका हृदय धड़क रहा था।

नन्दिनी के हृदय में भी स्पन्दन हो रहा था। उदय फिर से दीख पड़ेगा, और अपने नये स्वरूप में नन्दिनी के मन का मन्थन कर डालेगा ! उसके मन का मन्थन क्यों हो ? यह स्त्री-सहज निर्बलता का परिणाम तो नहीं है ? परन्तु नन्दिनी क्या यह नहीं जानती कि उदय का मन भी नन्दिनी के पीछे ही लगा रहता है ? तब तो पुरुष का हृदय भी निर्बल ही होता है ! परन्तु इस प्रकार के पारस्परिक आकर्षण को निर्बलता कैसे कहा जाये ?

निर्बलता नहीं तो और क्या है ? जहाँ आकर्षण न होना चाहिए, वहीं बार-बार मन का आकर्षित होकर जाना, निर्बलता नहीं तो और क्या है ? महारानी-पद नन्दिनी को मिले यह सम्भव नहीं; उदय भी राज्य, जाति और अपने सम्प्रदाय को छोड़कर नन्दिनी से विवाह कर सके, यह सम्भव न था। तब क्यों नन्दिनी उदय की प्रतिष्ठा, महत्ता और सुख का बलिदान माँगे ?....अपना व्यक्तिगत अधिकार बनाये रखने के लिए ? क्यों न महल में जाकर उदय की दासी बनकर रहे ? इस प्रकार वह उदय के सुख, आराम और वैभव की रक्षा कर सकेगी। उसका यह आत्म-त्याग उदय की दृष्टि में उसे उच्च स्थान दिलाएगा, और

महाराणा पर उसका प्रभाव रानियों से कहीं अधिक रहेगा।

परन्तु यह विचार आते ही उसका मन-प्राण काँप उठा। उसकी प्रेमोर्मियाँ भ्रष्टता की ओर तो नहीं जा रही हैं? चन्द्र का प्रतिबिम्ब समुद्र, सरोवर या सरिता में न पड़कर किसी गड्ढे के थोड़े-से गँदले पानी में पड़े, तो कैसा वीभत्स लगता है?

इससे तो अच्छा है उदय से पृथक् रहकर विरह के सन्ताप को चुप-चाप सह ले!

इतने में नन्दिनी की विचार-शृंखला टूटी। पालकी उठानेवालों ने पालकी को नीचे रख दिया। नन्दिनी ने देखा कि चण्डी मन्दिर आ गया था। पन्ना सँभलकर पालकी में से नीचे उतरी और नन्दिनी को भी उतरने का संकेत किया। पन्ना के पीछे-पीछे मन्दिर की पदावलियों पर चढ़ना नन्दिनी को अच्छा न लगा; परन्तु इस समय दूसरा कोई मार्ग न था। उदय को देखने का आग्रह मानकर आयी हुई नन्दिनी उदय को देखे बिना लौटती कैसे?

मन्दिर के चबूतरे पर दो सशस्त्र सैनिक खड़े हुए थे। उन्होंने पन्ना को सैनिक ढंग से नमस्कार किया। पन्ना को किये गये नमस्कार में नन्दिनी का भी समावेश हो जाता था। भीतर के खुले प्रांगण में चार सैनिकों का पहरा था। उन्होंने भी इन दोनो स्त्रियों का सैनिक ढंग से अभिवादन किया।

मन्दिर के गर्भगृह में जाकर पन्ना ने कहा—नन्दिनी, आओ! पहले हम लोग माता के दर्शन कर लें। उसके बाद एक झरोखे में बैठ-कर आक्रमण के लिए जाती हुई सेना को देखेंगे।

माता की मूर्ति में कोमलता का नाम तक न था। खड्ग, त्रिशूल, चक्र और भाला धारण कर शत्रु के संहार के लिए तत्पर शक्ति की आँखें विकराल थीं, और सुन्दर नारी अंगों से हिंसक भाव प्रकट होता था। मुख पर ऐसा क्रोध व्याप्त था मानो सारे जगत् को जला देगी! सिन्दूर से रँगे हुए परिधान दीपक के मन्द प्रकाश में अन्धकार को भयप्रद

बना रहे थे, और सारे वातावरण में रुधिर की लालिमा फैला रहे थे। माता मृत्यु-प्रेरक बन गयी थीं; उन्होंने महामारी का रूप धारण किया हुआ था।

नन्दिनी को आश्चर्य हुआ। माता ऐसी क्रूर हो सकती हैं? और वास्तव में यदि ऐसी क्रूर हों, तो उनका दर्शन क्यों करना चाहिए?

उसने प्रार्थना में संलग्न पन्ना की ओर दृष्टि घुमायी। पन्ना सचमुच ध्यान में इतनी तल्लीन हो गयी थी कि उसे आस-पास की वस्तुओं का भान ही न था। मानो वह समाधि में बैठी हो! नन्दिनी ने भी हाथ-जोड़कर माता को नमस्कार किया। वह क्या प्रार्थना करती? कौन-सी वस्तु माँगती? और ऐसी क्रूर दीख पड़नेवाली देवी माँगने पर दे भी सकेंगी? क्रूरता में से उद्भवित कोई भी प्रसाद स्पर्श-योग्य नहीं होता। नन्दिनी को यकायक ऐसा आभास हुआ मानो माता की आँखें कुछ विशाल हो गई हों और उनके रोम-रोम में मृत्यु नाचने लगी हो। नन्दिनी चौंक पड़ी।

'मा के श्रद्धापूर्वक पैर छुओ।' जाग्रत होकर पन्ना ने नन्दिनी से कहा।

'मा से आपने क्या माँगा?' नन्दिनी ने प्रश्न किया।

'मेरे जीवन की तो एक ही माँग है और वह यही कि मेरे उदय को माताजी चित्तौड़ की गद्दी दिलावें और उसे बप्पा रावल से भी अधिक यशस्वी करें।'

'मुझे कुछ माँगना नहीं है, तब मैं उनके पाँव क्यों पड़ूँ?'

'यह भी नहीं कि तुम्हारा उदय पुनः तुमको मिले?'

'नहीं! महाराणा उदय मुझे नहीं चाहिए।'

पन्ना कुछ अधिक बोली नहीं। परन्तु उसकी आँखों की चमक नन्दिनी को चण्डी की आँखों सदृश्य लगी।

दूर-दूर से डंकों की आवाज़ सुनायी देने लगी। धीरे-धीरे यह आवाज़ पास आने लगी। पुजारी और पुजारी के कुटुम्बीजन मन्दिर में ही रहते

थे। परन्तु इस समय उनमें से कोई भी वहाँ उपस्थित न था। सशस्त्र सैनिक और दो कोमलांगी नारियों के अतिरिक्त इस समय मन्दिर में और कोई न था!

'चलो, झरोखे में चलकर बैठें!' पन्ना ने कहा।

पन्ना का यह निमंत्रण नन्दिनी को बड़ा ही कठोर और कर्कश लगा, मानो पन्ना ने उसे वध-स्थान में ले जाने का निमंत्रण दिया हो। पन्ना-जैसी मेवाड़-पूजित सन्नारी नन्दिनी को कठोर और क्रूर क्यों लग रही थी? 'मा' क्या कभी क्रूर हो सकती है?

हाँ; माता बलि लेती थीं, यह बात नन्दिनी जानती थी। लोग बकरे, भैंसे मा को चढ़ाते थे। कभी-कभी कोई सर्वाङ्गसुन्दर युवक....अथवा पद्मिनी बनने की ओर अग्रसर होनेवाली किसी कुमारिका को भी बलि में समर्पित किया जाता था....नन्दिनी स्वयं भी तो कुमारिका ही थी!

नन्दिनी एक बार काँप उठी। क्यों? कम्पन अनायास ही हुआ होगा, उसने विचारा। उसने अपने को कभी पद्मिनी समझा न था। मालिन की बेटी कभी पद्मिनी बन सकती है? इस बात का श्रेय तो किसी ब्राह्मण कन्या अथवा राजपूत-राजकुमारी को ही प्राप्त हो सकता है।

झरोखे में आकर बैठने के बाद नन्दिनी की घबराहट कुछ कम हुई। पन्ना मुस्कराते मुख से उसकी ओर देख रही थी। सामने सेना का आना शुरू हो गया। उत्साह से अश्व नाच रहे थे। दुंदुभियाँ बज रही थीं। रणवाद्य सारे वातावरण में वीरता का भाव भर रहे थे। सैनिकों के मुख पर आनन्द था। छत्र-चामरधारी मांडलिक हँस रहे थे। पैदल सेना के पाँवों में त्रैलोक्य नापने की शक्ति दीख पड़ती थी। दर्शकों का हर्षनाद दूर-दूर तक सुनायी देता था। चण्डी का मन्दिर बस्ती से दूर था। अतः यहाँ लोगों की भीड़ न थी। परन्तु सेना की पंक्ति इतनी लम्बी थी कि दुर्ग से लेकर मन्दिर तक मानव-समुदाय फैला हुआ था। सैनिकों की टोलियाँ आती ही जाती थीं, सैनिकों का ताँता लगा हुआ था।

चित्तौड़ को घेरकर उस पर विजय प्राप्त करने के लिए इतनी सेना

पर्याप्त थी, यह पन्ना ने समझ लिया; और इस विचार ने उसके हृदय में हर्ष की हिलोर उठा दी ।

'देखो, यह सहीदास सलुम्बरा !....ये केलवा के जग्गाजी....और ये बागौर के संग ! कितने किशोर वय के हैं !....गुजरात के बहादुरशाह ने जब चित्तौड़ पर आक्रमण किया, उस समय इनके वयोवृद्ध सम्बन्धियों ने चित्तौड़ की शान रखने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी ! और उसी समय महारानी कर्णावती ने भी जौहर किया....' जैसे-जैसे मंडलेश्वर आते-जाते थे, पन्ना उनका परिचय देती जाती थी ।

'कर्णावती कौन ?' नन्दिनी पूछ बैठी ।

'उदय की माता महारानी, जिन्होंने उदय को मुझे सौंपा । और सौंपकर वे स्वयं चिता पर चढ़ गयीं। यह अखेराज सोनगीरा। ये सांचोर के पृथ्वीराज । चालीस वर्ष के ऊपर का कोई राजपूत मेवाड़ में दीख नहीं पड़ता ।' पन्ना पुरानी बातों को नयी बातों के साथ मिला रही थी ।

सैनिक बीच-बीच में विजयनाद करते-जाते थे, और उदयसिंह का जयघोष करके अपने उत्साह को आकाश तक पहुँचा देते थे ।

पन्ना अनिमेष नेत्रों से दुर्ग की ओर देख रही थी । यकायक उसे छत्र-चँवरधारी एक अश्वारोही आता दीख पड़ा, जिसे देखकर उसका हृदय एकबारगी जोरों से धड़क उठा ।

'देखो, देखो, उदय आ रहा है ।'

पन्ना के मुख पर वात्सल्य छा गया ।

नन्दिनी ने एक बार उधर देखकर अपना मुख घुमा लिया, और सवारी की ओर पीठ कर के बैठ गयी ।

'यह क्या नन्दिनी ?'

'हो गया !....उदय को देख लिया ।'

'उदय का स्वागत न करोगी ? लो ये फूल !'

'नहीं, स्वागत बाद में होगा । मैं तो उसे अपना मुँह भी न दिखाऊँगी ।'

'क्यों ?'

'मैंने कहा है कि वह चित्तौड़-विजय करके आयेगा तभी अपना मुँह दिखाऊँगी।'

पन्ना ने नन्दिनी की ओर देखा। नन्दिनी का यह विचार उसे पसन्द आया या नहीं, यह पन्ना के चेहरे से प्रकट न हो सका। परन्तु नन्दिनी को इस बात का आभास अवश्य हुआ कि चमकती तलवार के लोहे-जैसी कोई चमक क्षण-भर के लिए पन्ना के मुख पर घूम गयी।

सेना के साथ चल रहे किसी चारण कवि ने यशोवर्णन आरम्भ किया। सारी सेना में उत्साह की एक लहर फैल गयी। वीरों की सहज झुकनेवाली कमर पुनः सीधी हो गयी, और शस्त्र अपने-अपने हाथ में धारण करनेवालों ने अपने आयुधों को कसकर पकड़ लिया।

कवि के पीछे-पीछे एक सुन्दर अश्व पर बैठा उदय आ रहा था। एक समय का निराधार बालक इस समय अश्वारूढ़ बना मेवाड़ी सेना का नेतृत्व कर रहा था! उसकी किशोर-सुलभ कोमलता में इस समय पौरुष झलक रहा था! उसके मुस्कराते सुन्दर मुख पर आज शौर्य की झाँकी थी!

पन्ना के हृदय में लहरानेवाले वात्सल्य के सागर में यकायक ज्वार उठा! उसे तीव्र इच्छा हो आयी कि वह बालक उदय के मस्तक पर अपना हाथ रखे, और उसे अपनी गोद में लेकर वक्षस्थल से लगाये। उसके हृदय में अनेक विचार उठ रहे थे। उदय को देखने में वह बिलकुल तल्लीन हो गयी थी। उदय ने झरोखे के नीचे लाकर अपने अश्व को खड़ा कर दिया। आनन्द में भान भूली पन्ना कुछ देर तक उदय को देखती रही। उदय ने पन्ना को प्रणाम किया। हर्षाश्रु बहाती हुई माता उठकर खड़ी हो गयी और उसने उदय को आशीर्वाद दिया।

माता और पुत्र के इस कार्य को सारी सेना ने खड़े होकर देखा। सब ने इस बात की अनुभूति की कि यदि पन्ना न होती तो उदय का अस्तित्व भी न रहता।

कवि ने आगे बढ़कर पन्ना को उद्देश्य कर एक जोशीला कवित्त पढ़ा। पन्ना तो विस्मृत-सी खड़ी थी। सारी सेना ने शान्त रहकर उस कवित्त को सुना, और कवित्त के पूरा होने पर पन्ना का जयघोष किया।

उदय अपने अश्व को झरोखे के और निकट ले आया। अश्व और झरोखे की ऊँचाई प्रायः समान थी। निकट आते ही पन्ना ने उदय पर फूलों की वर्षा करके आशीर्वाद दिया।

'धाय मा! क्या नन्दिनी नहीं आयी?' अश्व पर बैठे-बैठे ही उदय ने प्रश्न किया।

'यह बैठी है! मैंने तुमको वचन दिया था कि मैं उसे अवश्य ले आऊँगी!' कहकर पन्ना ने पीठ फेरकर बैठी हुई नन्दिनी की ओर निर्देश किया। परन्तु साथ ही उदय के इस प्रश्न ने पन्ना के हृदय में उछलते हुए प्रेम-सागर को शान्त कर दिया।

'तब तुम इसे अपने साथ ही ले आओगी न?' उदय ने दूसरा प्रश्न किया।

'अच्छा! अब विजय-यात्रा की ओर ध्यान दो, और चित्तौड़ जीतने के साथ ही विजय के समाचार मेरे पास भेजना!' सहज उग्रता के साथ पन्ना ने कहा। उदय का अश्व ज्योंही आगे बढ़ा, पन्ना ने अपनी दृष्टि घुमायी, ओष्ठ दबाकर दाँत पीसे और धीमे स्वर में बोल उठी, 'नन्दिनी! नन्दिनी! नन्दिनी! इसके अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं।'

उदय के आगे जितनी सेना चली गयी थी, उतनी ही उसके पीछे आ रही थी। उदय दृष्टि के परे हो गया। तब भी सैनिक तो चले ही आ रहे थे। अब सैन्य-निरीक्षण में पन्ना या नन्दिनी की कोई विशेष रुचि नहीं रही। नन्दिनी तो बहुत देर तक वैसी ही बैठी रही। ज़रा भी घूमी नहीं। पन्ना के रोषपूर्ण उद्‌गार को उसने सुना था। इस उद्‌गार ने पन्ना के प्रति उसके विरोध भाव को और भी दृढ़ कर दिया। किसी कुमार और कुमारिका को साथ-साथ खेलने से रोकनेवाले वय-वृद्ध सम्बन्धी उन कोमल हृदयों का सद्‌भाव कभी पा नहीं सकते! फिर

पन्ना ने तो इस बारे में काफ़ी कड़ाई से काम लिया। नन्दिनी की अनेक शारीरिक और मानसिक क्रीड़ाओं को उसने रोक दिया था।

'नन्दिनी! सेना गयी।' कुछ देर बाद पन्ना बोली।

नन्दिनी अपने स्वप्न से जैसे जाग उठी।

'अच्छा!'

'इधर मेरी ओर देखो।'

'क्यों?'

'मैं तुम्हें कुछ कहना चाहती हूँ।'

नन्दिनी ने घूमकर पन्ना की ओर देखा। उसके मुख पर तिरस्कार का भाव स्पष्ट रूप से दीख पड़ता था। इसके पहले कि पन्ना इस भाव को देखे और समझे, स्वयं नन्दिनी पन्ना की मुखाकृति देखकर काँप उठी। भय को दबाकर नन्दिनी ने पूछा—कहिए, क्या कहना है?

'तुम मरना जानती हो?'

नन्दिनी ने पन्ना के सामने क्षण-दो क्षण तक देखा। नन्दिनी की मुखाकृति भी कठोर हो रही थी। उसका भय तिरोहित हो गया। उसने उत्तर दिया—मरना तो एक ही बार सीखना पड़ता है, मरने के समय!

'मान लो कि मृत्यु कदाचित् इसी समय आ पहुँची हो!'

'तब यह विश्वास रखना कि मैं ऐसे ढंग से न मरूँगी जिससे आप-को और मुझको कोई कलंक लगे।'

'मृत्यु तुमको प्रिय लगेगी?'

'हाँ, मृत्यु यदि जैसा मैं चाहती हूँ वैसी हो।'

'कैसी?'

'मैंने और उदय ने बाघ-बाघिन का शिकार किया था। मरते समय बाघ और बाघिन ने एक-दूसरे का स्पर्श करते हुए प्राण छोड़े थे। ऐसी मृत्यु मुझे मिले, तो मैं सहर्ष उसे स्वीकार करूँगी।'

'इसका तो यह अर्थ हुआ कि उदय को भी तुम्हारे साथ मरना चाहिए?' पन्ना की आँखें तलवार की तरह चमक उठीं।

'मैंने तो अपने मरने का ढंग बता दिया।'

'परन्तु तुम यह जानती हो न कि मैंने तो उदय को मृत्यु से बचाने के लिए ही जन्म लिया है!'

'होगा! इस बात का स्मरण मुझे कराने का कारण?'

'इसलिए कि उदय की जान मुझे बचानी है।'

'वह तुम्हारे नाम पर मन्दिर और स्मारक निर्मित करायेगा! यह सब मुझे क्यों कहती हो?'

'इसलिए कि तुम उदय की मृत्यु-रूप हो!'

'मैं? क्या कहती हो?'

'और उसकी मृत्यु का संहार मैं करूँगी।'

'इसके लिए उदय से पूछ लिया है न?' सहज मुस्कराकर नन्दिनी ने पूछा।

'इसका उत्तर बाद में दूँगी।' क्रूरता से पन्ना ने जवाब दिया। नन्दिनी ने पन्ना के मुख की क्रूरता को ध्यान से देखा। पन्ना भी कुछ क्षणों तक नन्दिनी की ओर देखती रही। मालिन की यह कन्या उसे वास्तव में बड़ी ही कोमल और सुन्दर लगी। उसका रूप आकर्षक था। पुरुषों को ही नहीं, स्त्रियों को भी उसकी ओर देखना प्रिय लगे, ऐसी उसकी कमनीयता थी। दूर खड़े सशस्त्र सैनिक अभी तक जहाँ के तहाँ खड़े थे। उनमें से कोई हिला भी न था। मन्दिर में इस समय पूर्ण शान्ति थी। शान्ति का पूर्ण विकास दो ही स्थितियों में होता है : मृत्यु अथवा मुक्ति में। इस समय का वातावरण कैसा था—मुक्ति का अथवा मौत का?

'क्या देख रही हो मेरी ओर?' शान्ति भंग करते हुए पन्ना ने पूछा।

'यही कि आपके इस सुन्दर मुख में कौन-सी विकृति दीखती है?'

'उसे तुम देर तक न देख सकोगी।'

'हो सकता है! परन्तु इच्छा होती है कि यह विकृति जितनी कम दीख पड़े उतना अच्छा।'

'यदि तुमको मरना हो, तो तुम कौन-सी रीति पसन्द करोगी ?'

'मरने के लिए रीति कैसी ?'

'विष पीकर, कटारी मारकर, पानी में डूबकर, जीभ काटकर....'

'इनमें की एक भी रीति मुझे पसन्द नहीं।'

जानती हो, तुम पर मुझे कितनी दया आती है ?' सचमुच पन्ना की आँखों में दया का भाव था।

'मैं दया की भीख नहीं माँगती। मेरे ऊपर दया करनेवाला मेरा दुश्मन होगा, समझीं ?'

पन्ना चुप हो गयी। उसे ऐसा आभास होने लगा कि जितनी अधिक वह नन्दिनी से बातचीत करेगी, उतनी ही उसकी दृढ़ता कम होती जायेगी। नन्दिनी का व्यक्तित्व पन्ना के हृदय में दया का भाव उत्पन्न कर रहा था, और यदि नन्दिनी ने इस दया का विरोध न किया होता, तो पन्ना कदाचित् अपनी योजना को दूसरा रूप दे देती।

'मुझे तुम पर दया आ रही थी; सोच रही थी कि तुम्हारे मरने के बाद तुम्हारी मा का क्या होगा, और कैसे उसकी आजीविका चलेगी....'

'मुझे मारकर मेरी माता का पोषण करने चली हो! तुम्हारी दया मेरी मा तक पहुँच गयी ? मैं तो तुम्हें अपना दुश्मन समझती हूँ। अब सुन लो अपने प्रश्न का उत्तर! मेरा दुश्मन मुझे मारने की जो रीति पसन्द करे, वही रीति मुझे भी पसन्द होगी। तुम जो ठीक समझो वह रीति पसन्द कर लो।' पन्ना को बीच ही में रोककर नन्दिनी ने कहा।

'लड़की! बढ़-बढ़कर न बोल।'

'क्यों न बोलूँ ? अभी तुमने या तुम्हारे बेटे ने चित्तौड़ तो जीता नहीं, उसके पहले ही चित्तौड़ की राजमाता बनने का अभिमान ?'

'आज चण्डी को तुम्हारी बलि चढ़ेगी। देखती हो उन सशस्त्र सैनिकों को ? वे इसी लिए यहाँ नियुक्त किये गये हैं। अब तुम्हारा जीवन कुछ ही क्षण का है। माँग लो जो माँगना हो एक अपने जीवन को छोड़कर!'

नन्दिनी उठकर खड़ी हो गयी। उसने अपने मन की घबराहट को

क्षण-भर के लिए रोक दिया। उसकी आँखें फैल गयीं; और उनमें भय के स्थान पर एक प्रकार की चुनौती दिखाई पड़ने लगी।

'तुम क्या दोगी? यदि मुझे कुछ माँगना ही होगा, तो मरने के समय भगवती चण्डिका से माँगूँगी। देनेवाली जगद्धात्री तो वे बैठी हैं!'

'तुम क्या माँगोगी....मरने के समय?'

'मैं यह मागूँगी....लेकिन पहले से तुम्हें क्यों बताऊँ? मृत्यु के समय सुन लेना मेरी माँग!'

पन्ना को आश्चर्य हुआ। उसने देखा कि जिसकी वह बलि चढ़ाना चाहती थी, वह कोई साधारण मरण-भीरु नारी नहीं। नन्दिनी की हिम्मत ने पन्ना के मन में संशय पैदा कर दिया। कहीं ऐसा न हो कि माता चण्डिका नन्दिनी की माँग को स्वीकार कर लें।

'तुम समझती हो कि माता तुम्हारी माँग स्वीकार कर लेंगी?' पन्ना ने पूछा।

'क्यों नहीं? मेरी बलि दी जायेगी; तुम्हारी नहीं। मेरी अन्तिम अभिलाषा माता अवश्य पूर्ण करेंगी, मुझे विश्वास है।'

पन्ना के मुख पर बेचैनी की छाया दीख पड़ी। इस असाधारण बालिका को क्या करे, वह सोच में पड़ गयी। एक ओर ऐसी तेजस्विनी कुमारिका के प्रति उसे दया आती थी। उसे मारने को जी न चाहता था। और दूसरी ओर उदय के हृदय-साम्राज्य पर राज्य करने की क्षमता रखनेवाली इस बालिका से भय भी लगता था। उसे जीवित छोड़ दे तो उदय आजीवन उसका बन्दी बना रहेगा!

तब क्या करे? इसी समय उसका वध कर डाले?

पर कहीं माता ने उसकी अन्तिम प्रार्थना स्वीकार कर ली, तो? यदि ऐसा हुआ तो जिस स्वप्न को पन्ना जीवन-भर देखती आयी थी वह सहसा छिन्न-भिन्न हो जायेगा। कहीं उपयुक्त समय पर उदय चित्तौड़ की गद्दी पर बैठने से ही इनकार न कर दे? उसने नन्दिनी को वहाँ न देखा तो कदाचित् ऐसा कर भी बैठे! पन्ना ने उसे अपने साथ चित्तौड़

ले आने का वचन उदय को दिया था ! नन्दिनी को आया न देख उदय अवश्य राजगद्दी को ठुकरा देगा। और यदि ऐसा हुआ तो पन्ना का आत्मत्याग निरर्थक हो जायेगा। पन्ना ने तो उदय के प्राण बचाये ही थे उसे चित्तौड़ का यथार्थ राणा बनाने के लिए !

पन्ना ने सहसा ताली बजायी। उसके मुख पर परस्पर-विरोधी भाव अभी तक छाये हुए थे।

दस सशस्त्र सैनिक उसके पास आकर खड़े हो गये।

'नन्दिनी को माताजी के पास ले चलो।'

दो सैनिकों ने आगे बढ़कर नन्दिनी के हाथ पकड़ने का प्रयत्न किया। नन्दिनी ने हाथ छुड़ाते हुए कहा—मेरी बलि चढ़ानी हो तो ऐसे राक्षसों के स्पर्श से मुझे अपवित्र न करो। मैं स्वयं माताजी के सामने चली चलती हूँ।

यह कहकर नन्दिनी आगे बढ़ी। पन्ना ज़रा लज्जित हुई; और सैनिकों के मुँह भी उतर गये। निःशस्त्र विरोध वीरों की वीरता को भी फीका कर देता है।

'तुम सोचती हो कि अपने इस नाटक से तुम बच जाओगी ? ले चलो इसे आगे ?' पन्ना ने चिढ़कर कहा।

मन्दिर निकट आने पर नन्दिनी यकायक हँस पड़ी और बोली—मैं अपना प्राण बचाने का प्रयत्न कर रही हूँ, ऐसा तुम समझ रही हो ? मेरी भलाई तो अब मरने में ही है !

और नन्दिनी माताजी के सामने जा पहुँची, और घुटनों के बल बैठ हाथ जोड़कर उसने अपनी आँखें मूँद लीं।

मन्दिर के अँधेरे गर्भगृह में केवल एक बड़ा-सा दीपक जल रहा था। उसका प्रकाश मूर्ति पर पड़ता हुआ, मूर्ति को देदीप्यमान कर रहा था। माताजी उस स्थान की एकमात्र अधिष्ठात्री थीं, यह बात स्पष्टरूप से दीख पड़ती थी। आयुध-धारिणी देवी के तेज के सम्मुख सब के मस्तक अपने-आप नत हो जाते थे।

पन्ना ने भी देवी की ओर देखा। उनकी मनोवांछा जानने की उत्कंठा पन्ना को हुई। वह स्वयं तो इसी निश्चय पर पहुँची थी कि उदय के अभ्युदय के निमित्त नन्दिनी की बलि चढ़ाना अभीष्ट है, और भगवती चण्डी भी यही चाहती हैं। उसका यह निश्चय धीरे-धीरे दृढ़ होता गया, और उसे कार्य में परिणत करने के लिए वह कर्मरत हुई। आज उसे अपना यह प्रयत्न सफल होताहुआ दीख पड़ा। आज उदय ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की, और आज ही उदय के अभ्युदय में व्यवधान-स्वरूप नन्दिनी माता के चरणों में अपना मस्तक देने को तैयार खड़ी थी! सफलता के इससे अच्छे और क्या संकेत हो सकते थे? परन्तु इतना होने पर भी माताजी की मूर्ति रुष्ट-सी क्यों दीख पड़ती थी?

बलि चढ़ाने से माता प्रसन्न होंगी, या न चढ़ाने से? माता को मानव-बलि अस्वीकार करने की रुचि कब से हुई? कार्य के महत्त्व के अनुरूप ही बलि होनी चाहिए। किसी महान कार्य की पूर्ति के लिए तो सर्वगुण-सम्पन्न वीर पुरुष का अथवा पद्मिनी कुमारिका की ही बलि उपयुक्त होगी। बलि चढ़ाने की विधि को पूर्ण करने के लिए पुजारी तैयार होकर बैठा था; और बलि भाग न जाये इसलिए दस सैनिक भी तैयार खड़े थे। नन्दिनी सरलता से मन्दिर में आ गयी थी, अतः उसे बलपूर्वक ले आने की आवश्यकता न हुई। इस प्रकार अभी तक पन्ना को अपने कार्य में कोई रुकावट न हुई थी।

अचानक किसी अदृश्य स्थान से पुजारी बाहर निकला। उसका मस्तक सिन्दूर और कुंकुम से रँगा हुआ था, कन्धे पर यज्ञोपवीत था, गले में रक्तसूत्र तथा मंत्र लटक रहे थे, भुजबन्द के स्थान पर काला डोरा बँधा हुआ था, और मदिरापान से लाल हो रही आँखें विकराल लग रही थीं। इस प्रकार की भयानक वेश-भूषा धारण करनेवाला यह देवी-पूजक मन्दिर की भीषणता को और भी बढ़ा रहा था। पुजारी ने आगे बढ़कर देवी को नमस्कार करनेवाली नन्दिनी के गले में कनेर पुष्पों की एक माला पहिना दी, और आँखों को चकाचौंध करनेवाला

एक कृपाण किसी अज्ञात स्थान से खींच निकाला और माता के सामने रखा। दीपक के मन्द प्रकाश में यह कृपाण चमक उठा। मदोन्मत्त महिष का शीर्ष एक झटके में काटने की सामर्थ्य रखनेवाले पुजारी को नन्दिनी का गला पुष्प-कलिका-सा कोमल लगा। उसे काटते कितनी देर लगेगी? एक जल्लाद की तरह पैंतरा बदलकर पुजारी ने कृपाण उठा लिया।

सहसा नन्दिनी ने अपनी आँखें खोलीं और ऊपर देखा; यमदूत-जैसा पुजारी उसके वध की तैयारी कर रहा था। धीरे-धीरे उसने मंत्रोच्चार आरम्भ किये। बलि चढ़ाने के लिए, बलि का वध करने के लिए, आवश्यक आवेश प्राप्त करने के हेतु मद्य पीकर उन्मत्त हो रहे पुजारी के कण्ठ से घरघराहट के साथ उच्चरित संस्कृत के मंत्र मृत्यु-टंकार-जैसे भयंकर लग रहे थे। ॐ ह्रीं क्लीम् का बार बार पुनरावर्तन करनेवाले यमराज-स्वरूप पुजारी को देखकर नन्दिनी को विश्वास हो गया कि पन्ना उसे उदय के मार्ग से सदा के लिए हटा देना चाहती है और अपनी यह क्रूर अभिलाषा पूर्ण करने के लिए उसने अपनी सारी योजना पर धर्म का पवित्र परिधान डाल दिया है। नन्दिनी काँप उठी। उसके हृदय का स्पन्दन बढ़ गया; उसका सारा जीवन आँखों के सामने खड़ा हो गया—उदय सामने आकर बैठा, निराश्रिता माता की मूर्ति सामने आयी! उसका जीवन अब क्षण-दो क्षण का था। उठी हुई कृपाण कुछ ही क्षणों में उसके गले पर गिरेगी, और उसके जीवन का उच्छेद कर देगी।

नन्दिनी ने पुनः एक देवी की ओर देखा। पन्ना अभी तक संशय में ही पड़ी थी। वह निश्चय न कर सकी थी कि मूर्ति बलि माँगती है या नहीं। उसने अपनी दृष्टि पुजारी की ओर डाली। उसकी विकराल आँखों में उसे बलि का वध करने का निश्चय स्पष्ट रूप से दीख पड़ा। पन्ना ने अपनी दृष्टि पास में खड़े हुए सैनिकों की ओर घुमायी। समरांगण में निरन्तर मृत्यु का आलिंगन करनेवाले इन सैनिकों के मुख पर इस असहाय कोमल युवती का वध किये जाने का विरोध पन्ना को साफ़-

साफ़ दिखायी दिया। पन्ना अतिशय विह्वल हो गयी।

'बलि के हाथ-पाँव बाँधने पड़ेंगे !' पुजारी ने सैनिकों से कहा।

'क्यों ?'

'मैं जैसा कहूँ वैसा करो।' पुजारी ने आज्ञा दी।

'परन्तु यह तो चुपचाप बैठी हुई है, हिलती भी नहीं।' पन्ना ने कहा।

'मुझे इस काम का अधिक अनुभव है। ठीक समय पर बलि काँपने लगती है, भय से हिलने-डोलने लगती है, और भागने का प्रयत्न करती है। यदि खंडित रह गयी, तो माताजी इसे स्वीकार न करेंगी।' पुजारी ने अपना अनुभव बताया।

नन्दिनी को भी लगा कि उसका शरीर काँप रहा है, कदाचित् वह हिले-डोले, और दौड़ने लगे ! उसका शरीर उसके वश में न था। सहसा उसकी देह लड़खड़ाने लगी, नमस्कार में जुड़े हुए हाथ अलग हो गये, और बड़ी कठिनाई से उसने अपने शरीर को हाथों के बल गिरने से बचाया। इतने ही में उसकी दृष्टि देवी के व्याघ्र पर पड़ी। व्याघ्र को देखते ही उदय के साथ किया हुआ बाघ-बाघिन का शिकार उसे याद हो आया। मरने के पहले बाघिन इस तरह कायरता दिखाकर लड़-खड़ाती हुई गिरी न थी। मरनेवाली बाघिन का उसे खयाल आ गया।

मरना तो उस बाघिन की भाँति चाहिए—निश्चय से, भव्यता से, गौरव के साथ ! पुजारी मारने पर तुला हुआ था। उसके हाथ से बचना असम्भव था। तब कायरता से काँपते हुए क्यों मरा जाये ? मृत्यु निश्चित है, तब क्यों न वीरता से हँसते हुए प्राण दे दिया जाये ?

वातावरण की भयानकता और भी बढ़ गयी। नन्दिनी को छोड़-कर अन्य सब लोगों के कलेजे दहल उठे।

'मेरे हाथ-पैर बाँधने की आवश्यकता नहीं।' नन्दिनी ने कहा।

'तुम तो काँप रही हो !' पुजारी बोल उठा। उसका आवेश कुछ कम हो गया था।

'मदिरा तुमने पी है, मैंने नहीं। तुम स्वयं काँप रहे हो। काँपती

हुई तुम्हारी आँखें सब को काँपता हुआ देखती हैं।' नन्दिनी ने पुजारी को उत्तर दिया।

पुजारी का नशा बिलकुल उतर गया। ऐसी निर्भय बलि उसने आज तक कभी देखी न थी। क्रोध में आकर वह झल्ला उठा।

'चलो, बकवास न करो! माँग लो जो कुछ माँगना हो। यह तुम्हारी अन्तिम घड़ी है!' चिल्लाकर पुजारी ने कहा। पुजारी के शरीर से क्रूरता टपक रही थी। उसका मुख देख और उसकी भयंकर आवाज़ सुनकर पन्ना भी डर गयी और दो कदम पीछे हट गयी। कृपाण पुजारी के हाथ में चमक रही थी।

नन्दिनी को भी यह विश्वास हो गया कि उसकी अन्तिम घड़ी अब आ पहुँची है। उसने हाथ जोड़कर चण्डी की मूर्ति की ओर देखा। उसका भय अदृश्य हो गया था। मृत्यु को कब से सामने देखनेवाली नन्दिनी को अब मृत्यु ज़रा भी भयजनक न लगी। उसने स्थिरता से अपनी अन्तिम इच्छा माता के आगे व्यक्त की :

'मा! मरने के समय की अन्तिम इच्छा यदि तुम पूरी करती हो तो सुन लो मेरी यह विनती! उदय को चित्तौड़ की गद्दी न दिलाना, और जब तक मैं दूसरा जन्म न ले लूँ, और उदय से जाकर न मिलूँ, वह बराबर भटकता, ठोकरें खाता रहे!'

पन्ना, पुजारी और सैनिकों ने ये शब्द सुने। जो वातावरण नन्दिनी को—किसी भी बलि को, किसी भी भावुक को, भयग्रस्त करने के हेतु रचा गया था, वही वातावरण आज बलि अर्पण करनेवालों के कलेजों में कुठार-सा लगा। बलि चढ़ानेवाले काँप उठे, और उनको यह आभास हुआ कि माता की मूर्ति ने नन्दिनी पर प्रसन्न होकर उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

पन्ना की विह्वलता और भी बढ़ गयी। उसने उदय को बचाया, उसे पाल-पोस कर बड़ा किया, और चित्तौड़ भेजा, इसलिए नहीं कि वह भटकता रहे, ठोकरें खाता रहे। वह उदय को चित्तौड़ के सिंहासन

पर बिठाना चाहती थी। और नन्दिनी ने तो कुछ दूसरा ही वर माँग लिया। कहीं ऐसा न हो कि नन्दिनी के मरने से उदय चित्तौड़ के युद्ध में हार जाये! पन्ना की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। उसे ऐसा आभास हुआ कि यह बालिका उसके हाथ में आयी हुई सिद्धि छीन रही है। कार्य-सिद्धि के लिए अब एक ही मार्ग था। पन्ना ने आज्ञा दी—आज नन्दिनी की बलि रोक दो!

नन्दिनी, सैनिक और पुजारी चौंक पड़े।

'तब कब बलि चढ़ेगी?' पुजारी ने पूछा।

'जिस क्षण तुमको यह सन्देश मिले कि उदय चित्तौड़ के सिंहासन पर आसीन हो गया, उसी क्षण माता के सामने इसका शिरच्छेद करना।'

'तब तक?' सैनिकों के नायक ने पूछा।

'तब तक नन्दिनी इसी भूगर्भस्थान में गुप्तरूप से क़ैद रहेगी। उसके क़ैद रहने की बात ज़रा भी प्रकट हुई, तो समझ लेना कि तुम बारहों आदमियों की बलि उसी क्षण यहाँ चढ़ा दी जायेगी।' पन्ना ने आदेश दिया। आदेश देकर वह मूर्ति के सामने गयी। माता को उसने प्रणाम किया। उसे माता की मुखमुद्रा से ऐसा आभास हुआ, मानो उसका निश्चय उन्हें भी पसन्द आया हो। दर्शन कर वह घूमी और लौटने के लिए क़दम उठाये। निराश पुजारी ने उसके सामने आकर निवेदन किया—परन्तु पन्ना देवि! बलि चढ़ाने का संकल्प करने के बाद इस प्रकार चले जाना उचित नहीं! बदले में कुछ चढ़ाना पड़ेगा।

'श्रीफल की बलि चढ़ाओ।' पन्ना ने आज्ञा दी।

'बस? श्रीफल ही? एक बकरा....?' पुजारी को तो मद्य के साथ माता को मांस का भी नैवेद्य चढ़ाने की आदत पड़ गयी थी।

'आज एक भी जीव की हिंसा न होगी।' पन्ना ने कहा।

मृत्यु के मुख के बची हुई नन्दिनी तो जैसे स्वप्न देख रही थी। उसने पन्ना को बाहर जाते हुए देखा।

नन्दिनी का एक स्वप्न अदृश्य हो गया। परन्तु शीघ्र ही दूसरा

स्वप्न सामने आया। चण्डी-मन्दिर के तलघर में वह क़ैद की गयी.... मृत्यु अभी उसके सिर पर नाच ही रही थी! उदय के सिंहासनारूढ़ होने के समाचार उसे तलवार की धार पर सुनने होंगे!

उदय कहाँ होगा?

चित्तौड़ के मार्ग पर! चार-छः दिन उसे पहुँचने में लगेंगे; तब युद्ध होगा। उसके चित्तौड़गढ़ जीत लेने पर....नन्दिनी को मरना पड़ेगा!

परन्तु यदि उदय चित्तौड़ न जीत सका, तो?

मैं यदि जीवित रही तो उदय को चित्तौड़ पर अवश्य विजयी करूँगी। परन्तु पन्ना मुझे जीने न देगी—नन्दिनी ने विचार किया।

पन्ना के इस विचित्र व्यवहार का कारण? नन्दिनी ने उसका क्या बिगाड़ा था? पन्ना उदय की माता थी, नन्दिनी प्रियतमा! क्या माता को उचित है कि पुत्र की विजय के लिए वह प्रियतमा का उच्छेद करे? उसने अपने पुत्र की आहुति देकर उदय को बचाया और पाल-पोसकर बड़ा किया। यह कैसे कहा जाये कि उसके हृदय में उदय के लिए प्रेम नहीं है? उदय की उन्नति का, उदय के विकास का अवरोधन करनेवाली प्रेम-मूर्ति यदि तोड़ दी जाये, तो हर्ज़ ही क्या? पन्ना के इस कार्य में बुराई ही क्या थी?

'परन्तु मेरी मा की क्या दशा हुई होगी?' उदय की माता का विचार आते ही नन्दिनी को अपनी माता का स्मरण हो आया। बेचारी नन्दिनी की माता! अकेली, भग्न-हृदया, आश्रय बिना की! मैना का नन्दिनी के प्रति प्रेम, पन्ना का उदय के प्रति जो वात्सल्य था उससे कम तो न था।

नन्दिनी की आँखों में आँसू भर आये। आँसू-भरे नेत्रों के सामने एक सत्य घटना घटित हुई। आधीरात को विह्वल हो रही मैना ने पन्ना के निवास-स्थान के द्वार खटखटाये। कूटनीति के नये अनुभव से सम्पन्न पन्ना ने द्वार खोले और पूछा—क्यों मैना, कैसे आयी?

'मेरी बेटी कहाँ है ?'

'क्या अभी तक नहीं लौटी ? मैंने तो उसे कब की लौटा दिया.... सायंकाल के पहले ही।'

'पन्ना देवि ! मेरि बेटी मुझे लौटा दें।'

'मैं आदमी भेजती हूँ, उसकी खोज कराती हूँ। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि वह उदय के पीछे चली गयी हो ?'

'नहीं, वह इस प्रकार उदय के पीछे जानेवाली नहीं !'

'तब क्या हुआ ? मैं तो उसे पालकी में वापस लायी हूँ।'

'पन्ना देवि ! यदि किसी ने मेरी बेटी को नुकसान पहुँचाया, तो माताजी उसका भला न करेंगी।'

'शाप देती हो ? एक मालिन की लड़की के खो जाने से, मानो सारे जगत् का उच्छेद हो गया ?'

'मेरे जगत् का उच्छेद तो हो ही गया।'

'अब सवेरे बात होगी; इस समय मुझे सोने दो !'

कहकर पन्ना ने अपने द्वार बन्द कर दिये, और अन्दर जाकर वह पलंग पर लेट गयी। नौकरों ने मैना को वहाँ से निकाल दिया। उस रात पन्ना, मैना या नन्दिनी—किसी को भी नींद न आयी !

८

राजमहल की अट्टालिका से अन्धकार में बनवीर ने चारों ओर दृष्टि डाली। चित्तौड़गढ़ की दुर्भेद्य रक्षा-पंक्ति दृढ़ता से खड़ी थी। अन्धकार में भी मेवाड़ के नृपतियों की रक्षा करनेवाला मेवाड़ियों के अभिमान का साररूप यह दुर्ग अडिग खड़ा हुआ था। परन्तु क्या वास्तव में यह अडिग था ? पद्मिनी का प्रेम माँगनेवाले अलाउद्दीन ने इस गढ़ की नीवें हिला दी थीं ! गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने राणा साँगा की मृत्यु के बाद विक्रमादित्य के समय में इस दुर्ग का ध्वंस किया था, यह प्रसंग तो बनवीर ने अपनी आँखों देखा था ! तब इस दुर्ग को अडिग कैसे कहा जाये ?

इस समय अन्धकार में बनवीर को यह दुर्ग हिलता हुआ दीख पड़ा। अन्धकार के कारण उसे कोई भ्रम तो न हुआ ? ऐसा वज्र-सरीखा दुर्ग हिला कैसे ? तब वास्तविकता क्या थी ?

बनवीर शस्त्रों से सज्ज था। पिछले दस वर्षों में उसे सौ वर्षों का अनुभव हुआ था। राजपूतों के लिए ये अनुभव वांछनीय थे। परन्तु बनवीर को इन अनुभवों का बोझ आवश्यकता से कहीं अधिक भारी लगा। तब उसने इस बोझ को उठाया क्यों ? मेवाड़ की कीर्ति को बढ़ाने के लिए ! परन्तु क्या उसकी मनोकामना पूरी हुई ?

नहीं ! दिल्ली में एक मुस्लिम वंश गया और उसके स्थान पर दूसरा आया; एक राजा अदृश्य हुआ, और दूसरे ने पदार्पण किया। हुमायूँ के बाद अकबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। मेवाड़ियों की दिल्ली-विजय की आकांक्षा उनके मन में ही रह गयी; वह फलीभूत न हुई। दूसरी ओर स्वयं मेवाड़ के हृदय पर आघात हुआ। बनवीर के व्यक्तित्व में एक महान् दोष था : उसका मातृपक्ष अशुद्ध था। यह बात सत्य थी कि इस अशुद्धि के कारण उसकी सुरूपता, बुद्धि और वीरता में किसी तरह की न्यूनता न आयी थी। वह राणा संग्रामसिंह का सगा भतीजा था, यह बात सर्वमान्य थी। परन्तु शंका उसके पिता पृथ्वीराज और माता शीतल-शयनी के विवाह के सम्बन्ध में थी। साधारण मान्यता यही थी कि इन दोनो का विवाह हुआ ही नहीं। अविवाहित सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले बालक बनवीर को काफ़ी अपमान सहना पड़ा ! अपमान की यह परम्परा उसके महाराणा-पद प्राप्त करने पर भी चलती रही। सूर्यवंशीय राजपूतों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करनेवाले सिसोदिया सामन्तों ने उसे अपना राणा बनाया, उसे सिंहासन पर बिठाया, और उसका नेतृत्व स्वीकार किया। परन्तु मेवाड़ में कितने ही ऐसे सरदार भी निकल आये, जिन्होंने उसका छुआ हुआ भोज्य-पदार्थ ग्रहण करने से इनकार कर दिया !

तब कतिपय सामन्तों ने मिलकर बनवीर को राज-गद्दी पर क्यों बिठाया, इस बात का वास्तविक रहस्य भी अन्य कुछ सामान्तों ने उसे

बता दिया। विक्रम के बाद जब तक उदयसिंह बड़ा होकर चित्तौड़ का शासन-भार सँभालने की क्षमता न प्राप्त करे, तब तक चित्तौड़ के सिंहासन की रक्षा करने के हेतु बनवीर महाराणा निर्वाचित किया गया था! बनवीर के हाथ का भोज्य-पदार्थ न लेनेवाला व्यक्ति राजदेह को अपमानित करने का अपराध करता था; और सिंहासनारूढ़ महाराणा को सिंहासन का पहरेदार कहना, यह स्पष्ट रूप से सिंहासन का अपमान करना था। राजदेह और राजगद्दी का अपमान न सहन करके यदि बनवीर अपमान करनेवालों को दंड दे, तो प्रजा उसे अन्यायी कहे! यह कैसी परिस्थिति है?

तब बनवीर ने राज्य-भार स्वीकार ही क्यों किया? सामन्तों की प्रार्थना को वह ठुकरा सकता था। उसने क्यों नहीं ठुकराया? क्यों नहीं वह अपनी जागीर सँभालकर चुपचाप बैठा रहा? चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठने की महत्त्वाकांक्षा तो उसे थी नहीं।

आश्चर्य यह था कि जिस उदयसिंह को उसने अपने हाथ से मृत्यु के घाट उतारा, उसे मेवाड़ की प्रजा जीवित बतला रही थी, और उसी को मेवाड़ की राजगद्दी का वास्तविक अधिकारी मानती थी। ऐसा तो न था कि उदय के नाम पर पन्ना ने किसी अन्य बालक को उसके सामने रख दिया हो? राणा साँगा के पुत्र यदि जीवित रहें तो आगे चलकर उनके नाम पर मेवाड़ की एकता छिन्न-भिन्न की जा सकती थी। इस अनिष्ट को दूर करने के लिए ही बनवीर ने अपने हाथ से विक्रम और 'उदय' का वध किया था; इतना होने पर भी रत्ना नायक पन्ना द्वारा खड़े किये हुए एक बालक को उदय कहकर पुकार रहा था, और उसके नाम पर सारी भील प्रजा को उकसा रहा था! इतना ही नहीं, राजगढ़ के सिंहराव और डूँगरपुर के यशकर्ण भी रत्ना का समर्थन कर सारे मेवाड़ी राजपूतों को अपने पक्ष में ले आने का प्रयत्न कर रहे थे!

बात यहीं तक न रुकी। सब मेवाड़ी राजपूत इकट्ठे हुए और उन्होंने मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ पर आक्रमण किया। उदय की तथाकथित

सेना ने बनवीर की पुत्री के लिए मँगाये हुए वस्त्रालंकार को लेकर आनेवाली सैनिक टुकड़ी को मार्ग में ही घेर लिया और उन बहुमूल्य वस्तुओं को लूट लिया। मेवाड़ियों के मन में बनवीर के प्रति ऐसा दुर्भाव क्यों प्रकट हुआ? बनवीर ने मेवाड़ के गौरव की रक्षा की, मेवाड़ की एक अंगुल ज़मीन भी उसने मुसलमानों के अधिकार में न जाने दी, और प्रजा पर किसी प्रकार का जुल्म भी नहीं किया! हाँ, इतना उसने अवश्य किया कि विक्रम और उदय का वध किया; उदय के नाम पर बग़ावत करनेवाले सामन्तों का उसने दमन किया; और अपने को अस्पृश्य माननेवाले मांडलिकों को कड़ा दंड दिया। इतना भी न करता तो मेवाड़ के गौरव की रक्षा कैसे होती? उसने निर्बलता का प्रदर्शन किया होता, तो मेवाड़ कभी का छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त हो जाता!

परन्तु यह दुर्ग पुनः हिला क्यों?

बनवीर ने अपनी तलवार पर हाथ रखा, और अट्टालिका से उतरकर वह महल के कक्ष से होता हुआ, बाहर मैदान में आया। उसके दो अंगरक्षक परछाईं की भाँति उसके साथ थे। उनमें से एक ने कहा—घोड़ा तैयार है।

'आवश्यकता नहीं, जयमल! पैदल ही चलेंगे।' बनवीर ने कहा।

'कहाँ-कहाँ जाना है?'

'दुर्ग के प्रत्येक दरवाज़े पर!'

'समाचार तो आ गये हैं कि सब स्थानों पर समुचित व्यवस्था हो गयी है।'

'आँहँ, मुझे सन्देह है।'

'किस बात का?'

'इस बात का कि चित्तौड़गढ़ के भीतर भी विश्वासघाती आदमी बसे हुए हैं।'

बनवीर और उसके दोनो अंगरक्षक चुपचाप आगे बढ़े। सारा दुर्ग सतर्कता से सो रहा था। दुर्ग के बाहर उदयसिंह की सेना घेरा डाल-

कर सतर्कता से खड़ी थी, और गढ़ के अन्दर प्रत्येक कंगूरे पर सैनिक मुस्तैदी से पहरा दे रहे थे। चार दिनों से घेरा डालनेवाले उदय की सेना ने अभी युद्ध आरम्भ न किया था। परन्तु उसका धावा किसी भी क्षण हो सकता था। इस धावे का सामना करने के लिए, गढ़वासी वीर तैयार खड़े थे !

दुर्ग में महाराणा बनवीर को प्रायः सभी सैनिक पहिचानते थे; यदि कोई न पहिचानता, तो उसे महाराणा की मुद्रिका परिचय कराती। दुर्ग के बुर्ज और दरवाजे पूर्ण रूप से रक्षित थे। बनवीर को अपने निरीक्षण-कार्य में कहीं भी अव्यवस्था दीख न पड़ी। तथापि न जाने क्यों एक विचित्र प्रकार की व्यग्रता उसे सता रही थी, और ऐसा आभास हो रहा था कि आज की रात्रि में कोई अनिष्ट घटना अवश्य घटेगी !

कदाचित् यह भ्रम हो ! सन्देह-मात्र हो ! अथवा दुर्ग के बाहर जो अविश्वास का वातावरण फैला हुआ था, क्या उसका असर दुर्ग के अन्दर भी आ गया था ? परन्तु यह तो स्पष्ट था कि चित्तौड़गढ़ के अतिरिक्त सारा मेवाड़ बनवीर का विरोधी हो गया था। तब दुर्ग के अन्दर भी, विद्रोह का प्रवेश हुआ हो, तो आश्चर्य ही क्या ?

बनवीर का हृदय धड़कने लगा। मेवाड़ के राणा का हृदय एक क्षण के लिए भी यदि कम्पित हो, तो यह दुर्बलता उसके लिए लज्जास्पद थी। जिस पृथ्वीराज की वीरता का गुणगान सारा मेवाड़ करता था, उसका पुत्र बनवीर दुश्मनों से नहीं डरता था; वह डरता था विश्वासघातियों के नीच कृत्यों से ! परन्तु विश्वासघात से भी डरना, सिसोदिया वीरों के लिए अशोभनीय था।

'महाराज !' बनवीर की विचारमाला को भंग करता हुआ सम्बोधन सुनाई दिया।

'क्या है ?' बनवीर ने पूछा।

'अभी पास ही में एक द्वार खुलने की आहट आयी !' अंगरक्षक जयमल ने धीरे से कहा।

'मैंने नहीं सुना; ऐसा हो नहीं सकता।'

'तब भी यदि हम चुपके से दक्षिण के दरवाजे पर पहुँच जायें तो क्या हानि ?'

'चलो।' कहकर बनवीर अपने अंगरक्षकों को साथ लेकर आगे बढ़ा। दरवाजे के निकट पहुँचते ही किसी ने उन्हें सावधान किया।

'सावधान !'

'महाराणा बनवीर !' एक अंगरक्षक ने सामने से उत्तर दिया। अन्धकार में बनवीर ने देखा कि दरवाज़ा आधा खुला हुआ था। तलवार खींचकर बनवीर आगे बढ़ा। उसके अंगरक्षक भी आयुध हाथ में लेकर उसके साथ ही बढ़े।

दरवाजे के प्रहरी ने सैनिक ढंग से महाराणा को नमस्कार किया, और अपनी मशाल को अधिक प्रज्वलित किया।

'इस समय दरवाज़ा क्यों खोला ?' बनवीर ने गर्जन किया।

'खोलने की आज्ञा थी, महाराज !' प्रहरी ने उत्तर दिया।

'आज्ञा ? किसने दी ? मैंने तो कोई आज्ञा नहीं दी।'

'मंत्रीश्वर की आज्ञा थी।'

'किस लिए ?'

'बैलों पर लदे हुए कुछ बोरे इसी समय आ रहे हैं।'

'आ रहे हैं, या आ गये हैं ?'

'आ रहे हैं।'

'एक-एक करके आने दो; जरा मैं भी देखूँ !'

प्रहरी ने संकेत किया, और संकेत पाकर एक बनजारा एक बैल को हाँकता हुआ द्वार के अन्दर आकर खड़ा हो गया।'

'बोरे में क्या है ?' बनवीर ने पूछा।

'अनाज है, अन्नदाता !' बनजारे ने उत्तर दिया।

'कहाँ से लाये ?'

'माहोली परगने से।'

'किसने भेजा ?'

'सोलंकी मंडलेश्वर ने ।'

'वह तो भागकर उदय से जा मिला है ।'

'तब भी उनका यह गुप्त आदेश है कि ये बोरे गढ़ के अन्दर पहुँचा दिये जायें ।'

बनवीर ने अपनी तलवार का अग्रभाग ज़ोर से बोरे में धँसा दिया। भरभराता हुआ अनाज नीचे गिरने लगा ।

बाहर से अपने को काले वस्त्र में छिपाये, एक व्यक्ति ने दूसरा बैल भीतर भेजा ।

'महाराज ! यह घेरा लम्बे समय तक चलेगा । अनाज आने दें ।'

'कौन, मंत्रीजी ?'

'जी ! यह मेरी योजना है । सोलंकी मंडलेश्वर ने हारकर भागते-भागते भी यह सहायता भेजी है....इसे स्वीकार कर लें !'

'परन्तु इस बात की खबर मुझे क्यों न दी गयी ?'

'रात गये मुझे इस बात से अवगत किया गया । आधीरात के बाद ये बोरे यहाँ पहुँचे । प्रभात होने के पहले इन्हें गढ़ में ले लेना है ।' मंत्री ने कहा ।

'अच्छा ! आने दो ।' बनवीर ने आज्ञा दी ।

एक और बोरा अन्दर लाया गया, और बनवीर ने अपनी बरछी उसमें धँसा दी ।

उसमें भी अनाज ही भरा था ।

तीसरा बैल अन्दर आया । उस पर लदे हुए बोरे के अन्दर बनवीर के अंगरक्षकों ने अपनी तलवारें धँसा दीं । उनमें भी अनाज ही भरा था ।

'महाराज ! ज़रा भी सन्देह हो तो, सारा अनाज वापस भेज दूँ ?' मंत्री ने खिन्न होकर पूछा !

'मेरे आदेश के अनुसार काम होगा ।' बनवीर ने व्यवस्था अपने हाथ में ली ।

चौथा, पाँचवाँ, छठा, इस प्रकार एक के बाद एक बैल द्वार के अन्दर आया, और प्रत्येक के बोझ में बनवीर अथवा उसके अंगरक्षकों ने अपनी बरछी धँसाकर देख लिया। यह क्रम चलता रहा।

जब दसवाँ बोरा अन्दर लाया गया, तब मंत्री अत्यन्त व्यग्र हो उठे। अन्धकार के कारण उनके मुख पर आयी व्यग्रता किसी को दीख न पड़ी। प्रत्येक बोरे की परीक्षा ली जा रही थी। स्वामिभक्त मंत्री की स्वामिभक्ति पर इस प्रकार सन्देह किया जाये, यह मंत्रीश्वर को पसन्द न आया।

दसवें बोरे में से भी जब अनाज ही निकला, तब बनवीर ने कहा—अच्छा, अब अधिक जाँच करने की आवश्यकता नहीं। बोरे अन्दर आने दो।

'महाराज! अब आप विश्राम करें। कल गढ़ पर धावा होने की सम्भावना है। शत्रु की तैयारियाँ मैं देख रहा हूँ। हम लोगों के रहते आपको जागना पड़े यह....' मंत्री ने दुःखित स्वर में कहा।

'कोई चिन्ता नहीं! मुझे नींद आयी नहीं, अतः ज़रा घूमने निकल पड़ा।' बनवीर ने कहा।

'तो अब आप पधारें! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं द्वार बन्द कर दूँ। कहें तो इन बैलों को वापस भेज दूँ? अथवा प्रत्येक बोरे को खोलने के बाद अन्दर लाने दूँ।'

'लौटाने की आवश्यकता नहीं। जैसा उचित समझो, करो।'

बनवीर के मन में कुछ देर के लिए जो अविश्वास उत्पन्न हुआ था, वह अदृश्य हो गया। बाहर से अनाज दुर्ग में लाने का कार्य अपने मंत्री को सौंपकर वह महल में लौट आया, और शरीर पर धारण किये हुए शस्त्रों को उतारकर उसने सोने का प्रयत्न किया। महीनों से, अथवा कहा जाये तो वर्षों से बनवीर को शान्ति न मिली थी। उसके शरीर को आराम की बड़ी आवश्यकता थी। पलंग पर पड़ते ही वह सो गया!

निद्रा में भी उसे युद्ध के स्वप्न आने लगे। कौन-सा आक्रमण

किस ओर से हुआ ? बनवीर ने उसका कैसे सामना किया ? भागती हुई सेना का किस प्रकार उसने पीछा किया ? किस-किस वीर के साथ उसे द्वंद्व-युद्ध करना पड़ा ? वह सोया-सोया ऐसे ही स्वप्न देखता रहा। स्वप्न में होनेवाले ऐसे ही एक द्वंद्व-युद्ध में से वह चौंककर जाग उठा। उसके मुख से एक भयंकर चीख निकल गयी, और सहसा स्वप्नों की परम्परा अदृश्य हो गयी। या कोई नया स्वप्न तो यथार्थ रूप में परिणत नहीं हो गया था ?

बनवीर तुरन्त उठकर बैठ गया। उसने शस्त्र सँभाला। उसको आभास हुआ कि उसके शयन-खण्ड के बाहर भयंकर कोलाहल मचा हुआ है। पलंग से कूदकर वह द्वार के पास पहुँचा। उसने देखा कि रक्षा में संलग्न।उसका एक अंगरक्षक प्रहारों को रोकता हुआ हारी हुई बाज़ी खेल रहा है। दूसरा रुधिर में सना हुआ अंगरक्षक उठने का निष्फल प्रयत्न कर रहा है।

बनवीर ने समझ लिया कि शत्रु दुर्ग में ही नहीं, राजमहल में भी घुस आये हैं, और उसके दोनो अंगरक्षकों के अतिरिक्त और किसी ने भी उन्हें रोकने का प्रयत्न नहीं किया है। उसे अपनी भूल पर पछतावा हुआ। उसने केवल दस बोरों की ही परीक्षा क्यों ली ? अन्य सब बोरे क्यों नहीं देखे ? उससे भयंकर भूल हो गयी ! परन्तु यदि उसका मंत्री ही षड्यन्त्र में शामिल हो तो वह क्या करे ? यदि विश्वासघात इतने ऊँचे स्थान तक पहुँच गया है, तो राज्य करना असम्भव है-—उसे यह विचार आया और इसके साथ ही, उसकी हिम्मत टूट गयी !

'जयमल ! अब बस करो !' बनवीर ने आज्ञा दी।

'मेरे जीते-जी यदि आपका एक बाल भी बाँका हो तो मेरी माता को लज्जित होना पड़ेगा।' द्वार के अन्दर पैर रखनेवाले सैनिक का संहार करते हुए जयमल ने उत्तर दिया।

'मेरी आज्ञा है। अब लड़ना निरर्थक है।' बनवीर ने कहा।

'महाराज की आज्ञा शिरोधार्य है; परन्तु लड़ना निरर्थक न होगा।

सौ सैनिकों को तो मैं सहज में रोक सकूँगा ।' दक्ष अंगरक्षक जयमल ने सचमुच ऐसा स्थान चुना था कि जहाँ से वह अवश्य आनेवाले सौ-सौ सैनिकों को रोक सकता था ।

'मेरा एक मित्र मारा गया; दूसरे को मैं मरने न दूँगा ।' कहते हुए बनवीर ने जयमल की तलवार पकड़ ली ।

मौक़ा मिलते ही पन्द्रह-बीस सैनिकों की टोली द्वार के अन्दर घुस आयी, और उन्होंने बनवीर तथा जयमल को पकड़ लिया ।

'हमें पकड़ने की आवश्यकता नहीं । हमने अपने हथियार डाल दिये हैं ।' बनवीर ने कहा । बनवीर की मुखमुद्रा शान्त थी, परन्तु जयमल की आँखों से अंगारे बरस रहे थे ।

'पकड़ना नहीं ! राज-देह है ।' सैनिकों की टोली में से एक युवक ने आगे आकर कहा ।

सबका ध्यान उसकी ओर गया । बनवीर को भी आश्चर्य हुआ । उसने पूछा—क्या आपकी इस टोली में उदय है ?

'हाँ जी, मैं ही उदय हूँ । बड़े भाई का आशीर्वाद माँगता हूँ ।' आगे बढ़े हुए युवा ने उत्तर दिया ।

'मुझसे लड़े क्यों ? गद्दी माँग लेनी थी !' बनवीर ने कहा ।

'अब माँग रहा हूँ । पहले माँगता तो आप कदाचित् मुझे सच्चा उदय नहीं मानते ।'

बनवीर ने उदय को ध्यान से देखा । उसके मुख पर संग्रामसिंह के मुख का साम्य स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर था ।

'सारे मेवाड़ की यदि यही इच्छा है, तो मुझे राज्य की लालसा नहीं । मैंने पहले भी मेवाड़ की गद्दी की आकांक्षा नहीं की थी ।' बनवीर ने अपना निर्णय कह सुनाया ।

'महाराणा उदयसिंह की जय ।' सैनिकों ने जयघोष किया । इस जयनाद की प्रतिध्वनि राजमहल के बाहर दूर-दूर तक पहुँची और देखते-ही-देखते सारे चित्तौड़ में फैल गयी ।

बनवीर हँस पड़ा। उसके हास्य में तिरस्कार का भाव न था।

'आप हँसे क्यों?' उदय ने पूछा।

'मेरे राज्यारोहण के समय सारे चित्तौड़ में इसी प्रकार का जयघोष उठा था—मेरे नाम का!'

'मुझे भी यह जयनाद पसन्द न आया।'

'तब विजय प्राप्त करने के लिए तुम यहाँ क्यों आये?'

'केवल मेरी सच्ची माता पन्ना को प्रसन्न करने के लिए!'

'वह कहाँ है?'

'शीघ्र ही आ पहुँचेगी!'

'कोई दूसरा कारण भी है?'

'है अवश्य! परन्तु बड़ों के सामने कहने योग्य नहीं।'

'समझ गया। लगता है, किसी युवती को चित्तौड़ जीतने का वचन देकर आये हो।'

'जी!' उदय ने हँसकर अपनी सम्मति प्रदर्शित की।

'उदय! तुम मेवाड़ की रक्षा न कर सकोगे।'

'कारण?'

'तुम्हारा सारा समय तो अपनी माता और प्रियतमा को प्रसन्न रखने में ही बीत जायेगा....मेवाड़ को दिग्विजयी बनाने में हम और तुम दोनों असमर्थ हैं!'

'क्यों?'

'तुम्हें मेवाड़ की धुन नहीं लगी है।'

'आगे चलकर कदाचित् लगे। परन्तु इस समय तो मुझे भी राजगद्दी प्रिय नहीं लगती।'

'अच्छा सुनो, लो यह राजदण्ड। साथ ही, मैं जयमल को भी तुम्हारे सिपुर्द करता हूँ। इसकी रक्षा करना। समय आने पर यह भी तुम्हारी रक्षा करेगा।'

द्वार पर भयंकर युद्ध करनेवाले जयमल को उदय ने ध्यान से देखा

था। इस योद्धा के मुख पर वज्रवत् कठोरता झलक रही थी। उदय को यह कठोरता आकर्षक लगी। उदय ने रत्ना, रूपा और पन्ना के मुख पर भी कभी-कभी यही कठोरता देखी थी। परन्तु जयमल के मुख की कठोरता इन सबसे कहीं बढ़ी-चढ़ी थी।

विजेता उदय और पराजित बनवीर के बीच होनेवाली इस प्रकार की बातचीत से सैनिक आश्चर्य में पड़ गये।

राजमहल के बाहर तो सर्वत्र उदयसिंह का जयघोष हो रहा था।

९

पन्ना दो बार उतावली-उतावली चित्तौड़गढ़ से नीचे उतरी थी—दोनो बार उदय की जान बचाने के लिए! पहली बार अपनी बहिन-जैसी उदय की माता कर्णावती के जौहर के बाद; दूसरी बार अपने ही हाथ से अपने बालक की आहुति देकर! दोनो बार उसे पैदल चलना पड़ा था।

आज कितने वर्षों के बाद वह जल्द-जल्दी चित्तौड़ के गढ़ के ऊपर की ओर जा रही थी। इस बार वह पालकी पर बैठी थी। जल्दी ऊपर पहुँचने की उत्कण्ठा ने उसे व्याकुल कर दिया था। इस व्याकुलता का कारण? कारण यह था कि अपने पुत्र की बलि चढ़ाकर जिस राजपुत्र की उसने रक्षा की थी, वही राजपुत्र युद्ध में विजय प्राप्त करके आज मेवाड़ के सिंहासन पर आरूढ़ होनेवाला था! युद्ध के लिए प्रयाण करनेवाले उदय को उसने देखा था! आज वही उदय युद्ध में विजय प्राप्त करके सिंहासन पर आरूढ़ होनेवाला था। इस धाय के हृदय में माता का वात्सल्य अपने बाँध तोड़कर बह रहा था। वह लालायित थी अपने पुत्र का राज्याभिषेक देखने के लिए! मार्ग मानो कटता ही न था! वह उतावली हो गयी थी। हर्ष भी कभी-कभी श्वास का अवरोधन करता है, और हृदय को उद्वेलित कर देता है। पन्ना ने अनुभव किया कि आज उसका जीवन सार्थक होने जा रहा है।

विजय-समाचार सुनने के लिए भी वह कोमलमेर में नहीं रुकी। जल्द ही वहाँ से चल पड़ी। उदय की सेना के निकट आते-आते तो

उसे अनेक सुखद समाचार मिलने लगे। उदय ने एक दुर्ग जीता दूसरा भी जीता; एक मांडलिक ने उसका आधिपत्य स्वीकार किया। दूसरे मांडलिक को पराजित करती हुई उदय की सेना तीसरे मांडलिक की ओर बढ़ी जा रही थी। बनवीर की सेना हार रही थी। मेवाड़ का अधिकांश प्रदेश उदय के आधिपत्य में आ गया था। चित्तौड़गढ़ के सामने भयंकर युद्ध होने की आशा थी, और यदि बनवीर के मंत्री ने रात्रि के समय दुर्ग का द्वार खोलकर कुछ शत्रु-सैनिकों का भीतर प्रवेश न होने दिया होता, तो वहाँ अवश्य भयंकर संग्राम होता और दोनो पक्ष के असंख्य वीर मारे जाते। परन्तु उदय की भाग्य-लक्ष्मी उदयाचल की ओर बढ़ रही थी। जहाँ-जहाँ उसके पद-कमल पड़े, वहीं-वहीं उदय को विजय मिलती गयी।

उदय मेवाड़ से भी आगे जायेगा या नहीं ? अन्य कौन-सा प्रदेश जीतेगा ? उसके सामने दिल्ली का सिंहासन डगमगायेगा या नहीं ? क्यों न डगमगाये ? उदय के पिता जिस कार्य में असफल रहे, उस कार्य को उदय क्यों न कर दिखाये ?

दुर्ग में दुंदुभियाँ बज रही थीं, शंखनाद हो रहे थे। झाँझ-पखावज के शब्द चारों ओर फैल रहे थे। सारा चित्तौड़गढ़ तोरण-बंदनवारों से सजाया गया था, और उसके प्रत्येक बुर्ज पर ध्वज-पताकाएँ लहरा रही थीं। आज चित्तौड़ उत्सव मना रहा था।

किसका ?

उदय का ?

अथवा उदय की जान बचाकर, आज उसे चित्तौड़ की राज-गद्दी पर बिठानेवाली माता पन्ना के आगमन का ?

पन्ना के हृदय में हर्ष तो था ही; वह गर्व से भी फूल रहा था। कठोर कष्टों को सहकर आज वह विजयिनी बनकर गढ़ में प्रवेश कर रही थी। गढ़ के द्वार में प्रवेश करते ही उस पर पुष्प-वृष्टि हुई। हृदय की ऊर्मियों को दबाकर वह पालकी पर बैठी हुई थी। उसके मुख पर न

आयी किसी प्रकार की अशिष्ट स्मिति, और न दीख पड़ा कोई हर्षोन्माद।

नौबतें ज़ोर से बज रही थीं। सारे चित्तौड़ से वह परिचित थी! चिरपरिचित स्थानों को वर्षों बाद पुनः देखती हुई, पहिचानती हुई, प्रजाजनों के हर्षनाद के बीच पन्ना चली जा रही थी। आज का उसका ठाठ-बाट, उसका भव्य स्वागत किसी राजमाता से कम न था। कौन कह सकता था कि वह इस प्रतिष्ठा के योग्य न थी? सुख और सम्मान की लहरों में उसका मन बहा जा रहा था।

पन्ना की पालकी ज्योंही राजमहल में पहुँची, वहाँ भी नौबतें बजने लगीं। प्रत्येक महल के द्वार पर शहनाइयाँ बज रही थीं। स्वागत में बजनेवाले वाद्यों को सुनकर पन्ना को अभूतपूर्व आनन्द हुआ। सभा-गृह के पास जब उसकी पालकी रखी गयी, तब चोबदारों ने आगे बढ़-कर उसका अभिवादन किया। उसके स्वागत के लिए सभागृह के द्वार पर स्वयं उदय, अनेक मांडलिक राजा, सरदार और प्रजा के अग्रणी खड़े थे। पन्ना को लगा कि जैसे वह कोई स्वप्न देख रही हो।

पालकी ज्योंही पृथ्वी पर रखी गयी, त्योंही सुन्दर राज-वस्त्र और आभूषण धारण किये हुए उदय स्वयं आगे बढ़ आया, और सब सर-दारों तथा प्रजाजनों के सामने उसने पन्ना का हाथ पकड़कर उसे पालकी से उतारा और उसके पैरों पर अपना मस्तक रख दिया।

पन्ना के आनन्द की सीमा न रही। उसका कलेजा भर आया। अभी तक जिस दृढ़ता के साथ उसने अपने मन के भावों को दबाया था, वह दृढ़ता चली गयी। उसके मुख पर मृदुता छा गयी, और आँखों से चौधार आँसू बहने लगे। माता ने पैरों पर माथा झुका देनेवाले अपने पुत्र को उठाया, और उसके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। क्षण-दो क्षण के लिए पन्ना की दृष्टि उदय के मुख पर जाकर रुक गयी।

सारे राजमहल ने माता-पुत्र के इस मंगलमय मिलन को आनन्द और आश्चर्य के साथ देखा।

उदय और पन्ना दोनो सभागृह में आये। सब मांडलिक राजाओं ने उसका अभिवादन किया। उदय के पास ही पन्ना के बैठने का स्थान बनाया गया था। इन दोनो के आसन ग्रहण करने के बाद अन्य दर-बारी अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। तत्पश्चात् एक के बाद एक सर-दारों ने उठकर महाराणा का अभिनन्दन किया और उनको नमस्कार किया। सबसे पहले सरदार का स्थान प्राप्त करनेवाले रूपा नायक ने उठकर महाराणा को नमस्कार किया। एक के बाद एक आगे बढ़-कर नमन करनेवाले सरदारों को पन्ना ध्यान से देख रही थी। उसने बीच ही में पूछा—क्या बनवीर भी यहाँ है ?

'हाँ। वह अब महाराणा न रहकर सरदार बन गये हैं।'

'उनको सरदार किसने बनाया ?'

'किसने ? मैंने ही !'

'क्यों ?'

'उनकी यही इच्छा थी।'

'अपनी गद्दी छीननेवाले को, अपने भाई महाराणा विक्रम का वध करनेवाले को, और तुम्हारे अपने खून के प्यासे बनवीर को तुमने उसकी इच्छानुसार सरदार बनाया ? गुनहगार को इस प्रकार छोड़ देना मेवाड़ के महाराणा के लिए उचित नहीं !' राजमाता के अनुकूल गौरव के साथ पन्ना ने उदय को अपना मन्तव्य कह सुनाया।

बनवीर के विरोधी दो-तीन सरदारों ने भी खड़े होकर पन्ना के कथन की पुष्टि की।

उदय के मुख पर कठोरता की झलक आयी। उसने बनवीर की ओर देखा।

बनवीर ने खड़े होकर निवेदन किया—मैं गुनहगार नहीं हूँ। मैंने राजगद्दी छीनकर नहीं ल ी। मेवाड़ के सामन्तों ने अनुनय-विनय करके मुझे गद्दी पर बिठाया। व्यक्तिगत रूप में राज्य का लोभ मेरे मन में कभी नहीं आया। उदय जीवित बच गया, इसका परिणाम आप सब ने

देखा। मेरे विरुद्ध कितने षड्यंत्र रचे गये ? यदि विक्रम को छोड़ दिया होता, तो न जाने कितना विष मेवाड़ में फैलता ! मेरी यह पक्की धारणा है कि यदि उदय का भी वध हो गया होता, तो मेवाड़ी वीर आपसी वैर भूलकर आज दिल्ली के दरवाज़े पर जा पहुँचते।

बनवीर के मुख पर भय का नाम न था। उसके इस निर्भीक कथन को सुनकर क्रोध से कुछ सरदारों का खून खौल उठा।

'उदय ! क्या इन सब बातों को सुनने के लिए ही तुम गद्दी पर बैठे हो ?' पन्ना ने पूछा।

'बनवीर का कथन बहुत अंशों में मुझे सच्चा लगता है। यदि मुझे गद्दी पर बिठाने का प्रयास तुमने न किया होता, तो आज बनवीर के सभी विरोधी उसके कृपापात्र सरदार बन गये होते, इसमें तो सन्देह नहीं।' उदय ने उत्तर दिया।

'यदि यह तर्क सच्चा है, तो अब भावी संघर्ष मिटाने के लिए बनवीर का वध अवश्य होना चाहिए।' जालौरपति ने गम्भीरता से अपना अभिप्राय प्रदर्शित किया।

'जिस बनवीर ने प्रसन्नता से अपनी गद्दी मुझे सौंप दी, उसका वध मुझे अभीष्ट नहीं।' उदय ने भी गम्भीरता से कहा।

'प्रसन्नता से सौंपी ? पूछो उन मरे हुए सैनिकों की आत्मा से !' पन्ना ने आवेश में आकर कहा।

'इस शुभ प्रसंग को निर्विघ्न जाने दें; इसके बाद, यदि आवश्यकता हुई, तो वध के लिए मैं यहाँ तैयार ही रहूँगा।' बनवीर ने विवाद को शान्त करते हुए कहा। उदय ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

पन्ना की आँखों में खून उतर आया।

दरबार पूरा हुआ। उदय और पन्ना चोबदार और अंगरक्षकों के साथ रनिवास में गये। पन्ना के लिए एक विशेष खण्ड सजाकर तैयार रखा गया था। पन्ना ने उसमें न जाकर पूर्व के खण्ड में, जहाँ उसके पुत्र का वध हुआ था, वहीं जाने का आग्रह किया। उदय उसके साथ-

साथ चला। वहाँ पहुँचकर पूर्व क सारी स्मृति पन्ना की आँखों के सामने खड़ी हो गयी—अपने नन्हे-से पुत्र की मूर्ति उसे याद आयी; बालक का निर्दयता से होनेवाला वध याद आया; तलवारधारी बनवीर का रूप और करण्डक में छिपाये हुए उदय का मुख—दोनों याद आये! इस समय पन्ना के लिए दुःख प्रकट करने का अवकाश न था। वह धीरे-धीरे पुरानी सब बातें उदय को सुनाने लगी।

इतने में जयमल ने, जो अब उदय का अंगरक्षक नियुक्त हुआ था, आकर समाचार दिये—बनवीर पधारे हैं।

'उनको किसने बुलाया ?' उदय ने पूछा।

'माताजी ने।' जयमल ने उत्तर दिया

'हाँ, मैंने ही बुलाया है।' पन्ना ने कहा।

'क्यों ?' उदय ने पूछा।

'तुमको अभी ही पता लग जायेगा।'

'आने दो!'

महाराणा-पद का त्याग करनेवाले बनवीर ने नूतन महाराणा उदय को नमस्कार करके कहा—मैं हाज़िर हूँ....वध के लिए!

'उदय! लो हाथ में तलवार, और इसी जगह बनवीर का काम समाम करो।'

'पन्ना! तुम्हारी और सब आज्ञा का पालन करूँगा, परन्तु यदि किसी को मारने का आदेश दोगी, तो वह कार्य मुझसे नहीं होगा।' उदय ने दृढ़ता से कहा।

'मैंने तुमको इसी स्थान पर मौत के मुख से....इसी बनवीर के प्रहार से बचाया था....'

'इस उपकार के बदले में मेरा जीवन तुम्हारे चरणों पर समर्पित है। कहो तो अपने प्राण दे दूँ!' उदय ने कहा।

'और मेरी भी बात सुन लो! बनवीर की रक्षा करने का भार मैंने अभी तक छोड़ा नहीं है।' जयमल ने अपने कर्त्तव्य का भान कराया।

'देखो, उदय ! मरने से मैं डरता नहीं । बिना किसी वैर-भाव के तुमको आशीर्वाद देता हुआ मैं मरूँगा ।'

'अपने राज्यारोहण के समय पर मैं रक्तपात न करूँगा ।' उदय ने कहा ।

'यदि जीवित छोड़ दोगे, तब भी मैं मेवाड़ के लिए तो मृत समान ही रहूँगा ।' बनवीर बोल उठा ।

'यह कैसे ?' उदय ने पूछा ।

'मैंने निश्चय किया है कि अब मेवाड़ की भूमि में नहीं रहूँगा, उसे सदा के लिए छोड़कर चला जाऊँगा ।' बनवीर ने अपना निश्चय कह सुनाया ।

'इस प्रकार मेवाड़ छोड़ने का कारण ?'

'कारण यही कि मेरे चले जाने के बाद, मेरे नाम पर मेवाड़ के महाराणा के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र रचे जाने का भय ही न रहे ।'

'अच्छा ! आपकी जैसी इच्छा ! मेरी आज्ञा है कि जब तक आप मेवाड़ में रहें, तब तक आप सुरक्षित रहें । आपकी देह पर शस्त्र का आघात करनेवाला राज-वध का अपराधी समझा जायेगा ।' उदय ने अपनी आज्ञा कह सुनायी ।

पन्ना, बनवीर और जयमल क्षण-भर उदय के मुख को देखते रहे । बनवीर दो क़दम पीछे हटा, और उस खण्ड से अदृश्य हो गया ।

उदय उठकर गवाक्ष के पास आया, और वहाँ से चित्तौड़ को देखने लगा ।

संध्या का आगमन हो चुका था; राजमहल में दीपक जल उठे थे । अचानक घूमकर उदय ने पन्ना से पूछा—पन्ना ! नन्दिनी को साथ ही लायी हो न ?'

'नहीं ।' पन्ना ने उत्तर दिया ।

'वह कब आयेगी ?'

'वह आयेगी ही नहीं ।'

'क्यों ?'

'इसका उत्तर मेरे पास नहीं है।'

'तुमने मुझको वचन दिया था कि उसको अपने साथ ही ले आओगी।'

'मेरा पुत्र ही जब मेरी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता, तब मैं कैसे करूँ ?'

'तुम्हारी कौन-सी बात मैंने टाली ?....कौन-सी प्रतिज्ञा का पालन नहीं होने दिया ?'

'उसकी लम्बी सूची है। बताऊँगी किसी दिन, आज नहीं !'

'यह तो बताओगी न कि नन्दनी कहाँ है ?'

'नहीं।'

उदय ने एक तीक्ष्ण दृष्टि पन्ना के मुख पर डाली, और वह उठकर उस खण्ड से बाहर चला गया। पन्ना के मुख पर उसने मृत्यु की कठोरता देखी। पन्ना बलि माँगती थी ! बनवीर की बलि तो उदय ने रोक दी, कहीं ऐसा न हो कि पन्ना नन्दिनी की बलि चढ़ा दे ?

उदय का हृदय क्षुब्ध हो उठा। उसे इच्छा हुई कि कोई सुन्दर कोमल, आनन्ददायक दृश्य इस समय दीख पड़े तो अच्छा हो ! क्रूरता और कठोरता देखकर वह दुःखी हो गया था।

राजमहल का सिंगार उसे अच्छा न लगा। जगमगाती हुई दीपावली उसे भाले की तीक्ष्ण नोक के समान भयंकर लगी।

पन्ना के कक्ष से निकलकर, वह अपने खण्ड में आया, और बिछे हुए एक कोमल आसन पर बैठ गया। आसन की कोमलता में उसे सर्प की स्निग्धता का आभास हुआ।

उसे चैन नहीं आया। वह उठकर खण्ड में टहलने लगा। अपने अलंकृत खण्ड की प्रत्येक शृंगार-सामग्री में से उसने बहता हुआ रुधिर देखा।

'जयमल ! जरा रानीजी को तो बुला लाओ !' उदय ने सोचा कि

अपने साथ आयी हुई दो रानियों में से एक को बुलाकर उससे बात-चीत करे। कदाचित् रानी के सान्निध्य से उसकी उदासीनता दूर हो जाये!

जयमल रानीजी को साथ लेकर न लौटा, परन्तु उनकी ओर से एक विचित्र संदेशा अवश्य लाया—रानोजी ने कहलाया है कि....कि....

जयमल ने पूरा सन्देशा कहा नहीं।

'क्या कहलाया है?'

'मेवाड़ की महारानी कोई रखेली नहीं कि वह राणाजी के पीछे दौड़ती हुई जाये।'

'तात्पर्य?' उदय ने पूछा।

'यही कि राणाजी को ही रनिवास में जाना होगा।' जयमल उत्तर देकर तुरन्त खण्ड के बाहर चला गया।

मन्द-मन्द बहनेवाला पवन उदय को सुहावना न लगा।

चम-चम चमकनेवाले तारे आँखों को अच्छे न लगे।

'नन्दिनी आकाश में उड़ती हुई आये तो कितना अच्छा लगे?' उदय के हृदय में प्रश्न उठा।

आकांक्षा करते ही मानो नन्दिनी सामने से उड़ती, तैरती, हँसती हुई आ पहुँची! क्या यह सच था? उदय ने अपनी आँखों पर हाथ रखा।....यह क्या? नन्दिनी का हँसता हुआ मुख अदृश्य हो गया, और उसके बदले नन्दिनी के कण्ठ पर गिरनेवाली तलवार का दृश्य सामने झूमने लगा!

मरते समय भी नन्दिनी हँस क्यों रही थी?